बंगाल में खोई जमीन तलाशता वाम मोर्चा

जयंत घोषाल | वरिष्ठ पत्रकार

यहां स्कैन करें

यह आम चुनाव वास्तव में तृणमूल कांग्रेस और भाजपा के बीच ही है, यहां माकपा सीटें जीतने से कहीं ज्यादा अपना वोट प्रतिशत बढ़ाने की सियासी लड़ाई लड़ रही है।

एक समय था, जब भारत की राजनीति में वाम दलों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण हुआ करती थी। दिल्ली में आज भी अरुणा आसफ अली रोड है। अरुणा आसफ अली दिल्ली नगर निगम की पहली 'चेयरपर्सन' चुनी गई थीं। वह अपने दौर की काफी बड़ी वामपंथी नेता थीं। पश्चिम में महाराष्ट्र के श्रीपाद अमृत डांगे से लेकर तेलंगाना, आंध्र जैसे दक्षिणी प्रदेशों में, बल्कि पूरे देश में वाम नेताओं की जनता पर अच्छी पकड़ थी, केरल में तो खैर आज भी है।

ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ जब कांग्रेस देश की आजादी की लड़ाई लड़ रही थी, तब उसके भीतर ही वामपंथी और दक्षिणपंथी, दोनों तरह की सोच रखने वाले गुट सक्रिय थे। दक्षिणपंथी गुट के श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कांग्रेस से बाहर निकलकर जनसंघ की शुरुआत की, जबकि ईएमएस नंबूदिरीपाद आदि बहुत सारे नेताओं ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का दामन थाम लिया। मगर आगे चलकर वामपंथ में अंदरूनी विभाजन हुआ और आहिस्ता-आहिस्ता वाम नेताओं की पकड़ कमजोर पड़ती गई। सिर्फ पश्चिम बंगाल, त्रिपुरा और केरल में उनका कुछ आधार कायम रहा। केरल में आज भी उनकी सरकार है, पर पश्चिम बंगाल व त्रिपुरा में वाम मोर्चे की हालत खराब है। स्थिति यह है कि त्रिपुरा में भाजपा लगातार दूसरी बार सत्ता में आ गई है, वहीं पश्चिम बंगाल में लगभग साढ़े तीन दशक तक राज करने वाली माकपा और उसकी सहयोगी वाम पार्टियां बिल्कुल हाशिये पर चली गई हैं।

साल 2021 के विधानसभा चुनाव में वाम मोर्चे ने कांग्रेस के साथ गठबंधन किया था, उन्होंने 'इंडियन सेक्युलर फ्रंट' नाम की एक मुस्लिम पार्टी को भी इस गठबंधन का हिस्सा बनाया। नतीजा यह हुआ कि इंडियन सेक्युलर फ्रंट का तो एक उम्मीदवार इस चुनाव में कामयाब रहा, पर वाम दलों और कांग्रेस का एक भी प्रत्याशी चुनाव जीत न सका। ऐसे में, आज का सबसे बड़ा सवाल यही है कि इस आम चुनाव में वाम मोर्चे, खासकर माकपा की क्या रणनीति है?

कोलकाता में अलीमुद्दीन स्ट्रीट पर माकपा का मुख्यालय है। यहीं पर पार्टी के वरिष्ठ नेता विमान बोस रहते हैं। मोहम्मद सलीम सीपीएम के राज्य सचिव बनाए गए हैं। पार्टी में यह बेहद अहम पद है। ऐसे में, सवाल उठता है कि आखिर इतने वर्षों के बाद मुस्लिम समाज के एक नेता को माकपा ने क्यों राज्य सचिव बनाया? इसके पहले मुजफ्फर अहमद, जिनको प्यार से कॉमरेड 'काका बाबू' पुकारते थे, को इतना सम्मान मिला था। काका बाबू पार्टी के संस्थापक सदस्य थे। काका बाबू के बाद हमेशा बंगाली हिंदू ही सीपीएम के नेता बनते रहे हैं।

यह कोई ढकी-छिपी बात नहीं है कि पश्चिम बंगाल में लगभग 30 फीसदी मुस्लिम मतदाता हैं और भाजपा वहां आक्रामक हिंदुत्व का कार्ड खेल रही है। इस कार्ड ने उसे यहां जबर्दस्त कामयाबी भी दिलाई है। याद कीजिए, एक समय था, जब भाजपा कोलकाता नगर निगम चुनाव में महज दो सीट जीत सकी थी, तब लालकृष्ण आडवाणी ने खुशी जाहिर करते हुए बाकायदा बयान दिया था कि श्यामा प्रसाद मुखर्जी के सूबे में हमारा खाता खुल गया है। कोलकाता में भाजपा कार्यकर्ताओं ने खूब गुलाल उड़ाए थे, मानो कोई बड़ी जीत मिली है। आज प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और गृह मंत्री अमित शाह के नेतृत्व में पार्टी की सफलता का आलम यह है कि पिछले आम चुनाव में राज्य की 42 लोकसभा सीटों में से 18 पर जीत हासिल करके भाजपा ने न केवल सबको चौंका दिया, बल्कि अब वह विधानसभा में मुख्य प्रतिपक्ष है।

साफ है, बंगाल में सीपीएम की जगह भाजपा ने हथिया ली है। मोदी का राष्ट्रीय नेतृत्व का अपना आभामंडल तो है ही, राज्य में नेता प्रतिपक्ष शुभेंदु अधिकारी और राज्य भाजपा के अध्यक्ष सुकांत मजूमदार, दोनों काफी मेहनत भी कर रहे हैं। माकपा को यह लगने लगा है कि इंडियन सेक्युलर फ्रंट और कांग्रेस के साथ गठजोड़ करने से भाजपा को ही फायदा होता है, क्योंकि उसका हिंदू वोट भाजपा को और मुस्लिम आधार इंडियन सेक्युलर फ्रंट को ट्रांसफर होने लगा है, लिहाजा इस आम चुनाव में उसने कोई गठबंधन नहीं किया। अलबत्ता, उत्तरी बंगाल में उसने कांग्रेस के साथ सीटों का तालमेल जरूर किया है।

पश्चिम बंगाल में वाम मोर्चे की दुविधा यह है कि वह अपना सबसे बड़ा शत्रु किसको माने? स्वाभाविक राजनीतिक दुश्मन तो तृणमूल कांग्रेस ही है, क्योंकि ममता ने ही उसको सत्ता से बेदखल किया। माकपा इस बात को भूल नहीं सकती। फिर संदेशखाली की घटना से लेकर ममता सरकार में सामने आए भ्रष्टाचार के मुद्दों, मंत्रियों की गिरफ्तारी को भाजपा जितने जोर-शोर से उठा रही है, उन पर भी माकपा खामोशी नहीं बरत सकती, क्योंकि इससे उसकी विपक्ष की भूमिका प्रभावित होती है और यदि वह आक्रामक विरोध करती है, तो भाजपा विरोधी नैरेटिव को नुकसान पहुंचता है। 2019 और 2021 में माकपा की आंतरिक रणनीति थी कि 'पहले राम बाद में वाम।' यानी राज्य में अभी भाजपा को मजबूत होने दो, बाद में हम उसे हटाएंगे, फिलहाल ममता से निपटना जरूरी है।

मगर इस रणनीति को लेकर इस बार माकपा में मतभेद उभर आया। इस रणनीति के विरोधियों का कहना है कि यदि एक बार भाजपा कोलकाता की सत्ता पर काबिज हो गई, तो अगले तीस वर्षों तक माकपा के लिए सत्ता में लौटना सपना हो जाएगा। इसलिए माकपा दिग्भ्रमित है कि उसका मुख्य दुश्मन कौन है? उसकी एक बड़ी परेशानी यह भी है कि कार्यकर्ता-स्तर पर ममता विरोधी अधिक हैं, जबकि ऊपरी स्तर पर भाजपा के मुखालिफ नेता अधिक हैं। वे सांप्रदायिक मुद्दों को कहीं अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। लिहाजा इस बार यह देखने वाली बात होगी कि माकपा किसके वोट काटती है? पिछले चुनाव में उसका वोट प्रतिशत घटा था और भाजपा को इसका फायदा मिला था।

अगर इस बार सीपीएम कुछ वापसी करती है और हिंदू वोटों को अपनी तरफ खींचती है, तो इससे भाजपा का प्रदर्शन प्रभावित हो सकता है। इसी तरह, सीएए के बाद मुस्लिम वोट कितना माकपा को मिलता है, यह भी देखने की बात होगी, क्योंकि इस कानून से घबराए मुसलमानों के तृणमूल के पक्ष में लामबंद होने की सूचनाएं मिल रही हैं। जाहिर है, यह चुनाव तो ममता बनाम भाजपा ही है, वाम मोर्चा सिर्फ वोट प्रतिशत बढ़ाने और अपनी खोई जमीन वापस पाने के लिए लड़ रहा है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

रांची में छापे

प्रवर्तन निदेशालय (ईडी) ने झारखंड के ग्रामीण विकास मंत्री के ओएसडी और नौकर के घर समेत दूसरे अन्य ठिकानों से जिस बड़े पैमाने पर नकदी बरामद की है, वह हैरानी से ज्यादा एक गहरी टीस पैदा करने वाली खबर है। एक लंबे जन-आंदोलन के बाद जब यह प्रदेश अस्तित्व में आया, तो बड़ी उम्मीदें थीं कि कुदरती संसाधनों से आबाद यह सूबा तेज तरक्की करेगा और अग्रणी राज्यों में शामिल होकर अपने गठन के औचित्य को सार्थक साबित करेगा। आदिवासियों के जीवन में आमूल-चूल सुधार का सपना देखा गया था, मगर विकास की रफ्तार के बजाय इस प्रदेश की चर्चा नकारात्मक वजहों से ही ज्यादा हुई। अव्वल तो जब से यह बना है, राजनीतिक अस्थिरता का शिकार रहा है। इसे बने हुए अभी बमुश्किल तेईस वर्ष हुए हैं और इस दौरान दस सरकारें बन चुकी हैं। राज्य के दो पूर्व मुख्यमंत्रियों को भ्रष्टाचार के आरोप में अपना पद छोड़ना पड़ा। पूर्व मुख्यमंत्री मधु कोड़ा को तो एक मामले में तीन साल की सजा भी सुनाई जा चुकी है। उन पर हजारों करोड़ के कदाचार के अन्य मुकदमे भी चल रहे हैं।

विडंबना देखिए, इस समय देश में आम चुनाव हो रहा है, झारखंड की 14 संसदीय सीटों पर 13 मई और 1 जून को वोट डाले जाएंगे, मगर सार्वजनिक विमर्श में भ्रष्टाचार का मुद्दा बहुत प्रभावी नहीं बन पा रहा। यकीनन, कुछ राजनेताओं ने इसको मुद्दा बनाने की कोशिश की है, मगर लोगों के जेहन में यह मसला कौंध नहीं रहा। आखिर ऐसा क्यों है? क्योंकि मौजूदा समय में शायद ही कोई राजनीतिक पार्टी है, जिसका दामन भ्रष्टाचार के आरोपों से पूरी तरह पाक-साफ हो! जिस समय ईडी झारखंड की इस बरामदगी के सिलसिले में अपने दावे कर रही थी, लगभग उसी वक्त दिल्ली की शराब नीति संबंधी कथित घोटाले में गिरफ्तार प्रदेश के मुख्यमंत्री की जमानत याचिका पर सुप्रीम कोर्ट सुनवाई कर रहा था। फिर इलेक्टोरल बॉन्ड के खुलासे को कितने दिन बीते हैं? इसलिए भी शायद मतदाता इस विषय को लेकर उदासीन है। इस उदासीनता की एक वजह राजनेताओं के मुकदमों के निपटारे में देरी भी है। सीएसडीएस के सर्वे भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि भ्रष्टाचार वोटरों की चिंता में नीचे है।

एक गरीब प्रदेश के मंत्री के करीबियों के पास इतनी दौलत कहां से आई? भ्रष्टाचार के प्रति बढ़ती उदासीनता को तोड़ने के लिए भी अब प्रभावी कार्रवाई होनी चाहिए।

मगर यह उदासीनता और यह प्रवृत्ति झारखंड ही नहीं, समूचे देश के गरीबों व आम आदमी के लिए खतरनाक है। बताने की जरूरत नहीं कि भ्रष्टाचार की सबसे बड़ी कीमत उन्हें ही चुकानी पड़ती है। गौर कीजिए, देश के 36 राज्यों व केंद्र शासित क्षेत्रों की साक्षरता सूची में झारखंड 32वें नंबर पर है और नीति आयोग के मुताबिक, तीन सबसे अधिक गरीब आबादी वाले प्रदेशों में यह भी शामिल है। ऐसे में, भ्रष्टाचार से निपटने के लिए नागरिक जागरूकता की सबसे अधिक आवश्यकता है। यहां सवाल जांच एजेंसियों की दक्षता का भी है। प्रवर्तन निदेशालय अब तक कितने राजनेताओं के खिलाफ भ्रष्टाचार के मामले को आखिरी अंजाम तक पहुंचा सका है? सिर्फ सुर्खियां बटोरने और सनसनी पैदा करने से किसी एजेंसी की प्रतिष्ठा नहीं बनती। उसकी निष्पक्षता और प्रतिबद्धता लोगों की नजरों में अंतिम परिणाम से ही स्थापित होगी। ईडी को झारखंड के ताजा मामले की जांच तेजी से करनी चाहिए। एक गरीब प्रदेश के मंत्री के करीबियों के पास इतनी दौलत कहां से आई? इसकी जड़ तक पहुंचना बहुत जरूरी है। भ्रष्टाचार के प्रति बढ़ती उदासीनता को तोड़ने के लिए भी प्रभावी कार्रवाई की जानी चाहिए।

हिन्दुस्तान Hindustan | 75 साल पहले 08 मई, 1948

यूरोप का संगठन

यूरोप अनेक छोटे-बड़े देशों में विभक्त है। यूरोप ने भौतिक उन्नति के साधनों का विकास करने में कमाल हासिल किया और उसी के बल पर प्रभुत्व भी स्थापित किया। किन्तु यूरोप की एक बड़ी कमजोरी यह रही कि वह पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा, फूट और षड्यंत्रबाजी का अखाड़ा बन गया। राष्ट्रीय सार्वभौमिकता की भावना इतनी तीव्र रही कि उसकी रक्षा करने के लिए यूरोप के राष्ट्र सदा करने-मरने को उद्धत रहे। जहां यूरोप ने प्राकृतिक साधनों पर विजय हासिल की, वहां उसने समय- समय पर विनाशकारी युद्धों का सृजन भी किया, जिनके फलस्वरूप सारे संसार को महान विपत्तियों का सामना करना पड़ा। किन्तु पुराना यूरोप अब बदल रहा है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इतिहास की भूलों से उसने सबक सीखना शुरू कर दिया है। यद्यपि समस्त यूरोप के राष्ट्रों का एक सूत्र में आबद्ध होना आज भी दूर की संभावना प्रतीत होती है, किन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि यूरोप के कतिपय राष्ट्र समान उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एक-दूसरे के निकट आने का प्रयास कर रहे हैं।

कुछ दिनों पहले पश्चिमी यूरोप के राष्ट्रों का एक संघ बना था। उसके बाद अटलांटिक समझौता हुआ, जिसमें अमरीका भी एक बड़े भागीदार के रूप में शामिल हुआ। अब यूरोप की एक कौंसिल निर्माण करने का फैसला हुआ है, जिसे कुछ महत्वाकांक्षी लोगों ने यूरोप की प्रथम पार्लमेंट के नाम से संबोधित किया है। इस कौंसिल के विधान पर जिन देशों ने हस्ताक्षर किये हैं, उनमें ब्रिटेन, फ्रांस, बेल्जियम, नीदरलैण्ड, लग्जमवर्ग के अलावा इटली, आयर, नार्वे, डेनमार्क और स्वीडन भी शामिल हैं। संभवतः तुर्की और यूनान को भी निकट भविष्य में यूरोप की इस कौंसिल में शामिल कर लिया जायेगा। यूरोप के इस संगठन की दो शाखाएं होंगी। एक में यूरोपीय देशों की सरकारों के प्रतिनिधि होंगे। उसमें प्रत्येक देश एक प्रतिनिधि भेज सकेगा और वह उस देश का विदेश मंत्री या उपनिवेश मंत्री होगा। दूसरी परामर्शदात्री असेम्बली होगी, जिसमें गैरसरकारी प्रतिनिधि भी शामिल किये जा सकेंगे। इसके सदस्यों की संख्या ८७ निर्धारित की गई है और यह उन्हीं विषयों पर विचार और सिफारिश कर सकेगी जो मंत्रियों की समिति उसके पास भेजेगी। इस तरह यूरोप की इस पार्लमेंट का कार्यक्षेत्र बहुत सीमित होगा।

क्या अपना रुतबा खुद ही गिरा रहा अमेरिका

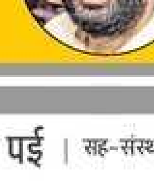

नितिन पई | सह-संस्थापक और निदेशक, तक्षशिला इंस्टीट्यूशन

यहां स्कैन करें

हमने 2000 के दशक का काफी समय यह बहस करते हुए बिताया कि भारत को अमेरिका के अनुरूप विदेश नीति में निर्णायक बदलाव क्यों करना चाहिए? तब शीत युद्ध की छाया खत्म नहीं हुई थी और पाकिस्तान के छद्म युद्ध को अमेरिकी समर्थन की यादें हमारे रणनीतिकारों के दिमाग में जिंदा थीं। साल 1998 में परमाणु परीक्षणों के बाद अटल बिहारी वाजपेयी की सरकार ने सोच में बदलाव की शुरुआत की थी और बाद में प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह परमाणु समझौते के रूप में एक बड़ी कामयाबी की ओर बढ़े थे। तब नई दिल्ली में कैबिनेट मंत्रियों से लेकर युवा अधिकारियों को भी अमेरिका-भारत रिश्ते पर संदेह था और उनका तर्क था कि एक महाशक्ति के साथ साझेदारी से भारत की रणनीतिक स्वायत्तता कमजोर पड़ जाएगी। सुरक्षा विशेषज्ञ के सुब्रमण्यम को छोड़कर बहुत कम ही लोग इस बात से सहमत थे कि अमेरिका के साथ घनिष्ठ गठजोड़ भारत के हित में है।

गौरतलब है कि अमेरिकी राष्ट्रपति जॉर्ज डब्ल्यू बुश के कार्यकाल के अंत में अमेरिकी शक्ति की गिरावट की बात करना वाशिंगटन में एक फैशन बन गया था। इससे बराक ओबामा को भी अपने चुनाव अभियान में मदद मिली थी। पत्रकार फरीद जकारिया ने तो अमेरिका के घटते रुतबे और शेष दुनिया की बढ़ती हैसियत पर साल 2008 में एक किताब लिख डाली थी। यह बात नई दिल्ली को भी बहुत अनुकूल लगी थी, क्योंकि एशिया की ओर होने वाले वैश्विक शक्ति संतुलन में यह अनुमानित बदलाव अच्छी खबर थी। हालांकि, यही तर्क देते हुए मैंने खुद को अक्सर अलग-थलग पाया कि पतनवाद दशकों से अमेरिका का पसंदीदा शगल बना हुआ है।

अमेरिका में राजनीतिक लचीलापन, विश्वविद्यालयों की उत्कृष्टता और उदार आप्रवासन, सभी इस समय खतरे में हैं।

मैंने इसके तीन कारण बताए कि क्यों अमेरिका में गिरावट की आशंकाओं को बढ़ा-चढ़ाकर पेश किया गया? सबसे पहले, अमेरिकी राजनीतिक व्यवस्था को उन गंभीर गलतियों से उबरने के लिए डिजाइन किया गया है, जो उसके नेता करते आए हैं। दूसरा, अमेरिका का उच्च शिक्षा पारिस्थितिकी तंत्र बहुत बेहतरीन है और तीसरा, यह लंबे समय से दुनिया के प्रतिभाशाली और उद्यमशील लोगों के आकर्षण का केंद्र बना रहा है। मेरा मानना है कि जब तक अमेरिका की ये तीनों विशेषताएं कायम रहेंगी, वह दुनिया की प्रमुख शक्ति बना रहेगा। हालांकि, विशेषकर पिछले 15 वर्षों में यह बहुत चौंकाने वाली बात है कि कैसे अमेरिका ने अपने इन अनिवार्य स्तंभों को गंभीर नुकसान पहुंचाया है।

अमेरिका की गिरावट के तीन कारणों में से पहले पर विचार कीजिए: राजनीतिक लचीलापन। जब कभी लगा कि अमेरिकी नीतियां विफल हो गईं, बार-बार चुनाव, राष्ट्रपति कार्यकाल की सीमा, नीतिगत प्रतिकूलता और संस्थागत ताकत ने अमेरिकी व्यवस्था के लिए नीतियां बदलने के हालात पैदा किए। सभी राजनेताओं और सरकारों से गलतियां होती हैं, पर हर व्यवस्था अपनी खामियों को स्वीकार नहीं कर सकती। माओत्से तुंग और उनकी नीतियों को आज भी चीन में आधिकारिक तौर पर गलती के रूप में नहीं देखा जाता, पर राष्ट्रपति आइजनहावर से लेकर बाइडन तक अमेरिका द्वारा की गई गलतियों पर न सिर्फ चर्चा होती है, बल्कि सुधार के उपाय भी किए जाते हैं। फिर भी, पिछले दशक में, अत्यधिक पक्षपात ने इस स्व-सुधार तंत्र को खत्म कर दिया है। सुप्रीम कोर्ट ने खुद को एक विश्वसनीय मध्यस्थ की भूमिका से घटाकर सिर्फ एक अन्य खिलाड़ी तक सीमित कर लिया है। अमेरिकी कांग्रेस काम करती नहीं दिखती है। नतीजतन, आज यह देश पिछले दशकों की तुलना में ज्यादा दबाव में है।

इसी तरह, अमेरिकी विश्वविद्यालय व्यवस्था बेशक दुनिया में सर्वश्रेष्ठ है, पर यह खुद के गहरे संकटों में फंसती जा रही है। इन दिनों कैंपस में चल रहे विरोध-प्रदर्शन उन विरोधाभासों को जाहिर कर देते हैं, जिनको अमेरिकी विश्वविद्यालयों ने पिछले दशक में अपनाया है। बड़े-बड़े दानदाता एवं पूर्व छात्र समूह शक्तिशाली हो गए हैं, तो उन्होंने शैक्षणिक स्वतंत्रता खत्म कर दी है, जो शिक्षा का सबसे जरूरी पहलू है। तीसरी वजह, अवैध आप्रवासन से निपटने के विवादास्पद तरीके के बावजूद अमेरिका आज भी अन्य देशों से उच्च गुणवत्ता वाली मानव पूंजी हासिल करने की क्षमता रखता है। यह एक ऐसा फायदा है, जो उसके कुछ ही प्रतिद्वंद्वियों के पास है।

(ये लेखक के अपने विचार हैं)

मनसा वाचा कर्मणा

विपक्ष के बिना खेल कहां

ध्यान क्या है? ध्यान का अर्थ है, अपनी मूल प्रकृति में लौटना। जब आप सांस के साथ सहज हो जाते हैं, तो बाकी सारी पहचान इसी में घुल जाती है। एक विजेता के लिए ध्यान करना असंभव है। इसलिए एक क्रिकेटर को मैच खेलते समय अपनी सारी पहचान छोड़ देनी चाहिए। यदि कोई क्रिकेटर निरंतर अपनी पहचान के अनुसार सोचे, तो उसके लिए यह बहुत बोझिल हो जाएगा। जैसे ही वह अपनी पहचान से पूरी तरह मुक्त होता है, उसके बाद उसे खेल खेलना नहीं पड़ता, वह तो सब सहज ही होता है।

कोई व्यक्ति एक महान क्रिकेटर कैसे बन जाता है? इसलिए नहीं कि उसके विरोधी दल में हुनर नहीं था। दरअसल, ऐसे खिलाड़ी के लिए चीजों के बीच तालमेल बिठाना अपने चरम पर होता है। वह जानता है कि उसे अपने जीवन में क्या चाहिए। वह जो चाहता है, उसके लिए इतना समर्पित होता है कि उसकी चाहत एक सच्चाई बन जाती है। अगर हमारे क्रिकेट खिलाड़ी अपनी ऊर्जा, शरीर और मन को इस तरह से संगठित करें कि वे अधिक से अधिक केंद्रित होते जाएं, फिर जो भी होगा, उत्तम ही होगा।

क्रिकेट भी बस एक तरह का काम है, जिसे कोई खिलाड़ी चुनता है। उस व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और आध्यात्मिक रूप से सचमुच सचेतन होना बहुत महत्वपूर्ण है। अगर मूर्ख लोग ही क्रिकेट खेलते हैं, तो क्रिकेट एक मूर्खतापूर्ण खेल बन जाता है। यदि बुद्धिमान लोग खेलते हैं, तो यह चतुर खेल बन जाता है। यह सब इस पर निर्भर करता है कि खेल कौन खेल रहा है! खिलाड़ी खुद के बारे में क्या सोचते हैं, यह क्रिकेट से अधिक महत्वपूर्ण है। अपने अंदर कोई खास गुण लाए बिना वे खेल की गुणवत्ता को नहीं बढ़ा सकते। यदि वे अपने अंदर विनम्रता लाएं, तो उनकी उपलब्धि ऐसी ऊंचाइयों को छुएगी, जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। जो यहां मौजूद है, इसकी स्वीकृति ही विनम्रता है। इस स्वीकृति में वे अपनी बुद्धि का उपयोग करके कार्य कर सकते हैं। किसी खास स्थिति से जुड़ने और उसका बुद्धिमानी से उत्तर देने के लिए स्वीकृति महत्वपूर्ण है। हम दूसरे दल को स्वीकार करें, यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। पूर्ण स्वीकृति में कोई विरोध शेष नहीं रहता।

किसी खास स्थिति से जुड़ने और उसका बुद्धिमानी से उत्तर देने के लिए स्वीकृति बहुत महत्वपूर्ण है। हम दूसरे दल को स्वीकार करें, यह सबसे अधिक जरूरी है।

क्रिकेट का कोई खेल तभी खेला जा सकता है, जब दूसरे ग्यारह खिलाड़ी मौजूद हों, तभी एक मैच संभव है। स्वीकृति में कोई तनाव नहीं रहता। दूसरे दल की काबिलियत और उनकी जीत के कीर्तिमान तब आपके लिए कोई समस्या नहीं रह जाते। पूर्ण स्वीकृति में उनकी उपस्थिति गायब हो जाएगी। यह एक आध्यात्मिक प्रक्रिया भी है। पूर्ण स्वीकृति में संपूर्ण अस्तित्व हमारा एक अंश बन जाता है। प्रकृति का यही रिवाज है।

सद्गुरु जग्गी वासुदेव

एम वेंकैया नायडू | पूर्व उप-राष्ट्रपति, भारत

सरदार वल्लभभाई पटेल ने उचित ही प्रशासनिक अधिकारियों को 'भारत का स्टील फ्रेम' कहा था। यह सिविल सेवक ही हैं, जो सरकारी नीतियों को लागू करते हैं और समाज के व्यापक हित में अपना योगदान देते हैं।

अनुलोम-विलोम
रायबरेली का रण

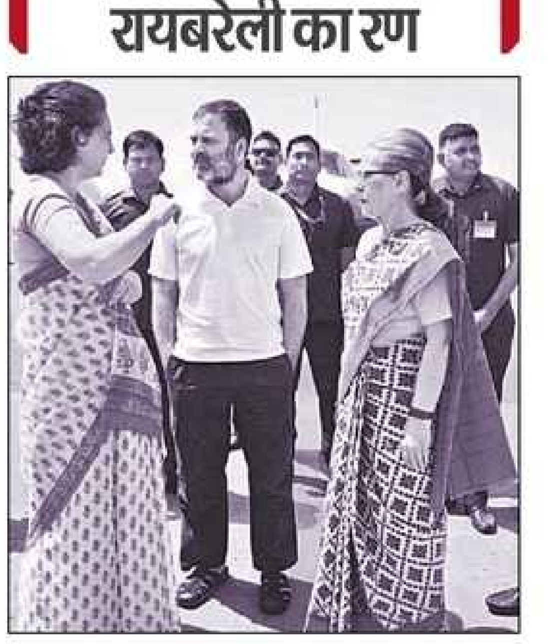

इंदिरा गांधी भी यहां खा चुकी हैं मात

यह सच है कि रायबरेली की संसदीय सीट से कांग्रेस खूब फली-फूली है। सबसे पहले 1952 में फिरोज गांधी यहां से चुनकर संसद पहुंचे थे। वह अगले चुनाव में भी विजयी हुए। इसके बाद इंदिरा गांधी की यह सीट रही और उनके नहीं रहने पर सोनिया गांधी ने इसे संभाला। अब राहुल गांधी ने नेहरू-गांधी परिवार की इस विरासत को आगे बढ़ाने के लिए यहां से पर्चा भरा है। यहां प्रियंका वाड्रा के चुनाव लड़ने की चर्चा भी चल रही थी, लेकिन कांग्रेस ने राहुल को प्रत्याशी बनाकर सारा ऊहापोह खत्म कर दिया। राहुल गांधी के नामांकन के समय सोनिया गांधी, अशोक गहलोत, प्रियंका गांधी जैसे नेता मौजूद थे। उप-चुनावों को भी यदि जोड़ लें, तो रायबरेली सीट से 17 बार कांग्रेस जीत चुकी है, जबकि दो बार भाजपा के अशोक सिंह और एक बार जनता पार्टी के राज नारायण यहां से विजयी हुए हैं। बसपा और सपा का यहां अब तक खाता भी नहीं खुल सका है।

फिर भी, यह कहना सही नहीं होगा कि राहुल गांधी के सामने जीत की थाली परोस दी गई है। रायबरेली के मतदाता बेहद जागरूक रहे हैं और उनको पता है कि कौन उनके हित में तत्पर रहा है? यही कारण है कि रायबरेली के लोग कुरसी देना जानते हैं, तो धूल चटाना भी उनको खूब आता है। 1977 का चुनाव ही याद कीजिए। आपातकाल से नाराज लोगों ने उन इंदिरा गांधी को हरा दिया, जिन्हें 'लौह महिला' कहा जाता है और जो 1967 से यहां की सांसद थीं। जनता पार्टी के राज नारायण ने उनको मात दी थी, जबकि उन दिनों इंदिरा गांधी के सितारे बुलंद थे और वह मजबूत शख्सियत की धनी मानी जाती थीं। इसी तरह, 1996 और 1998 में भाजपा के अशोक सिंह ने यहां के लोगों का प्रतिनिधित्व किया।

राहुल गांधी के लिए रायबरेली ठीक उसी तरह एक 'सुरक्षित सीट' है, जिस तरह कभी अमेठी को सुरक्षित माना जाता था। उल्लेखनीय है कि अमेठी में पिछले चुनाव में उनको हार का सामना करना पड़ा था। रायबरेली में उनका मुकाबला दिनेश प्रताप सिंह जैसे नेताओं से है, जो लगातार जमीन पर काम कर रहे हैं। नेहरू-गांधी परिवार बेशक रायबरेली को अमेठी से ज्यादा महत्व दे और इसे अपने लिए एक भावनात्मक व ऐतिहासिक मुद्दा बनाए, लेकिन रायबरेली ऐसी सीट है, जिस पर कभी इंदिरा गांधी को भी करारी हार का सामना करना पड़ा है। इसीलिए, कांग्रेस को आत्म-मुग्धता से बचना होगा। अगर पड़ोसी सीट अमेठी का इतिहास यहां भी दोहरा दिया गया, तो कांग्रेस पार्टी के लिए बहुत बुरी स्थिति हो जाएगी।

कांतिलाल मांडोत, टिप्पणीकार

रायबरेली ने हमेशा वफादारी निभाई

असल में, हम लोगों की यह आदत हो गई है कि जो हमें ठीक लगता है, वही सबसे ठीक बात है। अमेठी में राहुल गांधी को हराया गया था, आप सबको बुरा लगा था, मगर जिसे हराया गया था, उसे कितना बुरा लगा होगा कि उसने जीवन भर जिनके लिए काम किया, वे ऐन मौके पर दगा दे गए? कुछ लोग कहते हैं कि वहां बहुत पैसा बांटा गया, तो भाई, रायबरेली के लोगों को क्या यह ऑफर नहीं दिया गया था, मगर जो वफादारी रायबरेली ने निभाई है, यह उसका हक है कि उसे राहुल जैसा सांसद ही मिले। बाकी जिनको लगता है कि अमेठी के लोग प्रायश्चित में थे, कह रहे थे कि केवल पर्चा भर दें, हम राहुल को जिता देंगे। वे अगर वाकई में मानते हैं कि उनसे पूर्व में गलती हुई है, तो प्रायश्चित करें और शर्मा जी को जिताएं। राहुल गांधी ने उन पर भरोसा किया था, अब वे राहुल पर भरोसा करें। यही है उनके लिए सबसे बड़ा प्रायश्चित। वैसे भी, किसी भी प्रायश्चित की पहली शर्त यही होती है कि इसमें कोई शर्त या मांग नहीं लगाई जाती है।

बाकी जीतने के बाद भी राहुल रायबरेली नहीं छोड़ेंगे। यह उनकी परंपरागत सीट है। अच्छा लगा कि वह बिना किसी सोशल मीडिया के दबाव के इस फैसले तक पहुंचे। सौ की सीधी एक बात। लीडर ने फैसला ले लिया। उत्तर प्रदेश में आप उन्हें मांगते थे, वह आ गए। अपनी बगल की सीट वह बैठकर हरा देंगे। बस भरोसा रखिए। इतना हो-हल्ला मत मचाइए कि विरोधी दल के काम आने लगने लगिए। और एक बात। हर बात जो हम लोग समझते हैं, वैसी ही नहीं होती है। अमेठी के डीएम और चुनाव आयोग के अंदर के बहुत से इनपुट्स राहुल के पास हैं। यह पहली बार है कि विरोधी दल की तैयारी का खाका राहुल के पास है। आज आपको भले बुरा लग रहा हो, मगर 4 तारीख को आप उन्हें सही कहिएगा।

मार्केट में पैसा राहुल के नाम पर चलता है। यह राहुल भी अच्छे से जानते हैं, दो-तीन दिन गुजरने दीजिए, सब साफ होने लगेगा। अभी बस एक गुजारिश है कि जिस तरह राहुल जी अमेठी को ले रहे हैं, आप भी लीजिए। अपनी बात और मुद्दों पर अड़े रहिए। वही असली चुनावी मुद्दे हैं। राहुल की समझ पर मुझे कोई शक नहीं है और न ही प्रश्न है। एक बात समझ लीजिए, लीडर पर यकीन होना ही पहली शर्त है। ढुलमुल यकीन, यकीन नहीं होता। राहुल का निर्णय बिना प्रश्न के कुबूल है। उन्होंने बहुत सोच-समझकर यह कदम बढ़ाया है।

हफीज किदवई, टिप्पणीकार

कनाडा में खालिस्तानी

जयशंकर का बयान

कनाडा में खालिस्तानी अतिवाद की जड़ों के बारे में एस. जयशंकर का बयान बहुत महत्वपूर्ण है। हाल ही में त्रूदो प्रशासन की आलोचना करते हुए भारतीय विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने कनाडा पर आरोप लगाया कि वह संगठित अपराध से जुड़े लोगों को वीसा देता है, जबकि नई दिल्ली ने उसे 'अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता' के नाम पर अतिवाद, अलगाववाद व हिंसा के पैरोकारों को वैध बनाने के खिलाफ चेतावनी दी है। कनाडा में खालिस्तानी गतिविधियों में वृद्धि तथा हाल ही में तीन व्यक्तियों की भारत में घोषित आतंकी हरदीप सिंह निज्जर की हत्या के संबंध में गिरफ्तारी पर जयशंकर ने महत्वपूर्ण बयान दिया। उन्होंने कहा कि कुछ लोग राजनीतिक रूप से संगठित होने के बाद राजनेताओं को यह विश्वास दिला रहे हैं कि वे समुदाय का समर्थन प्राप्त कर सकते हैं और इस प्रकार वे लोकतांत्रिक देशों की राजनीति में अपने लिए 'स्पेस' बना रहे हैं। कनाडा ने आरोप लगाया था कि भारत ने उसकी धरती पर एक कनाडाई सिख की हत्या कराई थी। जयशंकर की प्रतिक्रिया उसका जवाब है। जयशंकर ने कनाडा सरकार के आरोपों को यह कह कर खारिज किया था कि कनाडा सरकार भारत सरकार की चेतावनियों के बावजूद संदिग्ध भारतीयों को वीसा देती है। खालिस्तानी अलगाववाद की जड़ों को 1980 के दशक में फैलने का काफी मौका मिला था जिसका परिणाम 'आपरेशन ब्लू स्टार' तथा 1984 में सिख-विरोधी दंगों जैसी त्रासद घटनाओं के रूप में सामने आया था। उस समय पैदा हुए घाव बने रहे जिसके कारण खासकर अनिवासी सिखों में अतिवादी विचारधाराओं को फलने-फूलने का अवसर मिला। सिखों की बड़ी संख्या वाला कनाडा खालिस्तानी एक्टिविस्टों और उनके हमदर्दों का केन्द्र बन गया। वहां भारत

में अभियोजन से बचने का प्रयास करने वालों को शरण मिली और इस प्रकार वह अपरिहार्य रूप से अलगाववादी विचारों के प्रचार का मंच बन गया। कनाडा की उदार आप्रवास नीतियों तथा बहु-सांस्कृतिक सोच ने खालिस्तानी आंदोलन को उपयुक्त माहौल दिया जिससे वह मजबूत हुआ। खालिस्तानियों के अनेक प्रमुख नेताओं को वहां 'सुरक्षित स्वर्ग' तथा सीमाओं के भीतर से समर्थन प्राप्त हुआ। लेकिन यह मुद्दा केवल वैचारिक हमदर्दी से आगे निकल कर संगठित अपराध और आतंकवाद तक विस्तार लेता है। पिछले वर्षों में कनाडा में खालिस्तानी तत्वों की उपस्थिति के अनेकानेक उदाहरण मिले जो आक्रामक संगठनों से लेकर आंदोलन के कथित दुश्मनों की लक्षित हत्याओं तक में शामिल थे। भारत ने बार-बार खालिस्तानी अतिवाद से संबंध रखने वाले लोगों के प्रति कनाडा की नरमी पर चिन्ता व्यक्त की है। विदेश मंत्री एस. जयशंकर की आलोचना कनाडाई अवस्थापना के कुछ हिस्सों की भूमिका के प्रति चिन्ता प्रकट करती है जो खालिस्तानी गतिविधियों को वैध ठहराते तथा उनमें सहायता करते हैं। उन्होंने कनाडा सरकार को आईना दिखा कर ठीक किया है जिसने भारत पर उसकी धरती पर एक कनाडाई सिख की हत्या का आरोप लगाया था। हालांकि, कनाडा ने अपनी ओर से इन चिन्ताओं को संबोधित करने के कुछ कदम उठाए, पर तथ्य है कि कनाडा सरकार ऐसे तत्वों के प्रति ज्यादातर हमदर्द है। कुछ ही दिन पहले कनाडाई प्रधानमंत्री जस्टिन त्रूदो की उपस्थिति में खालिस्तानी नारे लगाए गए थे। कनाडा को अभिव्यक्ति तथा आयोजनों की स्वतंत्रता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के साथ ही संतुलन बनाने का प्रयास करना चाहिए ताकि उसका क्षेत्र हिंसा और आतंकवाद के पालन-पोषण का स्थल न बन सके।

चुनावी राजनीति के बदलते आयाम

ऐसे देश में जहां चुनावी मौसम लगभग स्थाई हो, चुनाव अभियान तथा प्रशासन के बीच परंपरागत अंतर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार एक निरंतरता वाले राजनीतिक परिदृश्य का विकास होता है।

विनयशील गौतम
(लेखक, प्रबंधन सलाहकार हैं)

ऐसे देश में जहां चुनावी मौसम लगभग स्थाई हो, चुनाव अभियान तथा प्रशासन के बीच परंपरागत अंतर समाप्त हो जाता है। इस प्रकार एक निरंतरता वाले राजनीतिक परिदृश्य का विकास होता है। भारत में आजकल फिर चुनावी मौसम चल रहा है। इस कथन की प्रतिक्रिया आमतौर से यही होती है कि यहां चुनावी मौसम लगभग साल भर बना रहता है। देश के किसी न किसी हिस्से में कोई न कोई चुनाव हमेशा चलता रहता है। इस प्रकार संक्षेप में कहें तो लगभग हर मौसम चुनाव का मौसम बन जाता है। ऐसे में स्वाभाविक रूप से यह सवाल उचित हो जाता है कि लगातार चुनावी मौसम की यह परिघटना अच्छी है या खराब। ऐसे सवाल का जवाब अलग-अलग लोग अपने दृष्टिकोण तथा अपनी सामाजिक स्थिति के अनुसार देते हैं। लेकिन इस प्रकार के दृष्टिकोण आधारित निर्णय से कोई खास फर्क नहीं पड़ता है क्योंकि इस प्रकार के निर्णयों से वास्तविक स्थितियों में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

हालांकि, इस अवधारणा पर दार्शनिक दृष्टिकोण से विचार करना एक अलग मामला है। लेकिन जहां तक देश में वर्तमान समय में जारी 'चुनावी गरमी' का सवाल है, यह पहले के किसी समय से संभवतः एकदम अलग है। इसका प्रभाव देश के सभी हिस्सों पर पड़ता है और यह किसी एक या दूसरे क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है। वर्तमान लोकसभा चुनाव में चिन्तायें क्षेत्रीय होने के बजाय राष्ट्रीय हैं और अक्सर लोकसभा चुनावों के मामले में ऐसा ही होता है। ऐसे में लोगों की खास पसंदों को राष्ट्रीय परिदृश्य के दृष्टिकोण से देखना भी जरूरी हो जाता है। आमतौर से माना जाता है कि राष्ट्रीय मुद्दों में सुरक्षा, कराधान, शिक्षा तथा राज्यों के बीच आवागमन शामिल हैं। देश के कुछ क्षेत्रों में प्रवेश के विशेषाधिकार वाले प्राविधान लागू हैं। इसी प्रकार अंतर-क्षेत्रीय परिवहन ढांचा भी महत्वपूर्ण है जिसमें जलमार्ग भी शामिल हैं। आवागमन के इन ढांचों का प्रभाव लोगों, व्यापार और वाणिज्य पर पड़ता है। यह सूची अपने आप में बहुत लंबी है और इसमें नई-नई चीजें जोड़ी जा सकती है। इस चुनाव में प्रमुख मुद्दे राज्यों की सीमाओं से बाहर जाते हैं, उनका अखिल भारतीय प्रभाव पड़ता है अथवा इनसे देश के हर क्षेत्र के नागरिकों की पहचान पर प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार के सभी मुद्दों को शामिल करने से लोकसभा चुनाव अपने आप में विशिष्ट बन जाता है। अवधारणात्मक रूप से इस मुद्दे पर ध्यान रख कर चर्चा की जा सकती है।

लेकिन व्यावहारिक रूप से देखें तो इस अवधारणा के अलावा भी चुनाव में अनेक रंग हैं। देश में होने वाले चुनावों में हालिया समय में अक्सर धर्म की प्रमुख भूमिका सामने आती है, जबकि किसी भी व्यक्ति की पूजा पद्धति उसका निजी मामला है। भारत में पूजा पद्धति के विभिन्न तरीकों ने अक्सर लोगों की पहचानों को एकजुट करने का काम किया है। देश की स्वतंत्रता के लिए चले संग्राम में भी धर्म की विशिष्ट भूमिका रहीं है और इसे स्वतंत्रता संग्राम की विशिष्ट भेंट कहा जा सकता है। उपनिवेश युग के पश्चात दुनिया में शायद ही कोई ऐसा देश रहा हो जहां धर्म के आधार पर विभाजन हुआ हो, जैसा कि भारत में हुआ। इस प्रकार धर्म प्रकारान्तर से स्वतंत्रता की एक महत्वपूर्ण शर्त बन गया। हालांकि, यह स्पष्ट नहीं है कि धर्म ने किसी व्यक्ति या किसी खास लक्ष्य की कैसे सहायता की। यदि भारत के विभाजन का आधार धर्म था तो यह देख कर आश्चर्य होता है कि विभाजन के बाद बने एक देश ने स्वयं को मजबूती से एक धर्म के साथ जोड़ा, जबकि दूसरे हिस्से ने जोर देकर कहा कि उसका संबंध किसी धार्मिक पहचान से नहीं है। लेकिन 14 और 15 अगस्त, 1947 को दो देशों ने धर्म की पसंद के आधार पर स्वतंत्रता प्राप्त की, अथवा तकनीकी रूप से कहें तो औपनिवेशिक शासन से मुक्ति पाई। अंग्रेजों ने खासतौर से संकेत किया था कि वे सत्ता उन लोगों को वापस कर रहे हैं जिनसे उन्होंने प्राप्त की थी। इस प्रकार उन्होंने तत्कालीन एकीकृत भारत के अपने शासन को वैध ठहराया था। अब इसके बाद की बाकी सारी चीजें इतिहास बन गई हैं। लेकिन 15 अगस्त, 1947 के बाद इस उप-महाद्वीप ने ऐसा प्रयोग देखा जो अपने आप में विशिष्ट था और कुछ इतिहासकारों ने इसे 'भारत का एकीकरण' कहा। उस समय एक 'ब्रिटिश भारत' तथा दूसरा 'देशी रियासतों वाला भारत' था।

ब्रिटिश भारत वाले क्षेत्रों में निर्वाचित सरकार बननी थी, लेकिन देशी रियासतों को भारत या पाकिस्तान में शामिल होने का विकल्प दिया गया था। अब यह सब अतीत का हिस्सा बन गया है। उस समय मुल्तान, नार्थ वेस्ट फ्रंटियर टेरीटरी, जम्मू और कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद को छोड़ कर विलय की प्रक्रिया आमतौर से सहज थी और इस पर कोई खास विवाद नहीं था। हालांकि, उपरोक्त क्षेत्रों को भी देर-सवेर अपनी पसंद बतानी थी। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप एक एकीकृत भारत तथा एक एकीकृत पाकिस्तान का जन्म हुआ। जम्मू कश्मीर एकमात्र ऐसा राज्य था जहां जानबूझ कर एक विवाद को जीवित रखा गया।

वास्तव में यदि 'फ्रीडम एक्ट' की शर्तें लागू की जातीं तो कोई विवाद न होता, लेकिन एक या दूसरे तरीके से मुद्दे को भावनात्मक बनाए रखा गया। यहां केवल धर्म की भूमिका न होकर भू-राजनीतिक तत्वों समेत अनेक आयाम शामिल थे। इस मामले में शक्ति के अनावश्यक प्रयोग तथा कुछ ऐसे तत्वों की भूमिका से जटिलता बढ़ती गई जिनकी कोई स्थानीय भूमिका नहीं थी। पहले यह सोचा गया था कि राष्ट्रीय स्तर पर होने वाले चुनाव जम्मू कश्मीर पर विवाद के पूरे मुद्दे को निरर्थक बना देंगे। वर्तमान सरकार ने जम्मू कश्मीर पर लागू अनुच्छेद 370 व 35ए समाप्त कर समस्या के निराकरण का प्रयास किया है जिसके अच्छे नतीजे सामने आ रहे हैं। चुनाव अक्सर और नियमित रूप से तथा न्यायोचित ढंग से पूरे भारत में होते थे। लेकिन दुर्भाग्य से ऐसा नहीं हुआ। इस देश में चुनावों का एक खास पैटर्न है, भले ही यहां-वहां कुछ तत्वों को इससे अलग रखा जा सकता है। लेकिन कुछ अपवादों को छोड़ कर आम जनता अपनी पसंद चुनावों में स्वतंत्रता से अभिव्यक्त करती है और उसकी पसंदों का कुल योग ही इस बात को निर्धारित करता है कि देश में शासन कैसे चलेगा। ऐसे में यह सवाल महत्वपूर्ण हो जाता है कि देश भर में चुनावी मुद्दों का कुल योग मोटेतौर से क्या निकलता है।

अनेक राज्यों में स्थानीय मुद्दों का मतदान पर व्यापक प्रभाव पड़ता है और वे राष्ट्रीय प्रतिनिधित्व में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह स्थिति खासकर कर्नाटक, बिहार, मणिपुर तथा कुछ अन्य राज्यों में समझी जा सकती है। कुल मिला कर कहा जा सकता है कि वर्तमान लोकसभा चुनाव में विभिन्न क्षेत्रों के लोगों की पसंद सामने आने वाली है। लोगों की पसंद को उनकी संख्या की शक्ति से निर्धारित किया जाता है और इस प्रकार लोगों के उस समुदाय का विधायिका में प्रतिनिधित्व स्वीकार होता है। माना जाता है कि विभिन्न प्रकार की पसंद वाले लोगों ने विधायिका में समुचित संख्या में अपने प्रतिनिधि भेजे हैं। यह याद रखना जरूरी है कि आखिरकार चुनाव परिणाम घोषित होने के बाद विभिन्न मुद्दों पर चुनाव के दौरान व्यक्त पसंदों तथा चुनाव जीतने वाली पार्टी द्वारा प्रशासन संभालने पर उसकी जवाबदेही के बीच कोई संबंध नहीं होता है। यह भी कहा जा सकता है कि चुनाव एक प्रक्रिया होते हैं और भविष्य में यह प्रक्रिया और मजबूत तथा लोगों की इच्छाओं को ज्यादा अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली बनेगी।

वर्तमान समय में यह देख कर संतोष होता है कि कुल मिला कर चुनाव के माध्यम से लोगों द्वारा अपनी पसंद अभिव्यक्त करने की प्रक्रिया सुचारु रूप से जारी है। इस प्रकार लोग विधायिका में अपने प्रतिनिधि भेजते हैं और प्रशासन को इस प्रकार जिम्मेदार ठहराते हैं कि वह चुनाव में विभिन्न राजनीतिक पार्टियों के माध्यम से व्यक्त उनकी इच्छाओं और पसंदों का सम्मान करेगा।

यह भी कहा जा सकता है कि भारत जैसे विशाल देश में प्रशासन का तरीका लगातार विकसित हो रहा है। उम्मीद है कि भविष्य में देश पर संवेदनशील ढंग से प्रशासन करने का तरीका और समृद्ध होगा तथा वह चुनाव में जनता के विभिन्न तबकों द्वारा विभिन्न मुद्दों पर व्यक्त इच्छाओं के प्रति ज्यादा जवाबदेह ढंग से काम करेगा।

आर्थिक संवृद्धि पर पुनर्विचार आवश्यक

"अत्यधिक उपभोक्तावाद हमारी विरासत में निहित आध्यात्मिक मूल्यों का खंडन करता है।"

ब्रह्मकुमार निकुंज
(लेखक, आध्यात्मिक उपदेशक हैं)

अमेरिकी अर्थव्यवस्था को अक्सर विश्व अर्थव्यवस्था के इंजन के रूप में देखा जाता है, और यही कारण है कि अमेरिका में मंदी का कोई भी संकेत अन्य अर्थव्यवस्थाओं के लिए हानिकारक प्रभाव के बारे में गंभीर चिंता पैदा करता है। वर्तमान अर्थशास्त्र का कोई भी उत्सुक छात्र अच्छी तरह से जानता होगा कि अमेरिका की आर्थिक नीतियां, खासकर पिछले कुछ वर्षों के दौरान, अच्छी तरह से काम नहीं कर रही हैं। दरअसल, पिछले कुछ दशकों में हुए राष्ट्रपति चुनावों में सबसे शक्तिशाली नेताओं की हार का मुख्य कारण उनकी आर्थिक नीतियों की विफलता है, जिसने देश के लिए कई समस्याएं पैदा कीं। हालांकि, अधिकांश लोगों को यह एहसास नहीं है कि वहां जिन आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है, वे केवल हाल ही में अपनाई गई गलत नीतियों से उत्पन्न नहीं हुई हैं।

उनकी जड़ें कुछ गलत आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक अवधारणाओं और समय के साथ उन पर बने मॉडलों में छिपी हैं। उदाहरण के लिए, बढ़ती बेरोजगारी और भारी विदेशी कर्ज़ कोई रातोरात पैदा होने वाली घटना नहीं है और अनुमानित 11.5त्न अमेरिकियों के गरीबी में रहने की घटना भी केवल एक या दो साल की छोटी अवधि में पैदा नहीं हुई है।

उनकी दुखद आर्थिक स्थिति की जड़ें कम से कम द्वितीय विश्व युद्ध के अंत तक जाती हैं जब उन्होंने एक बहुत ही शानदार जीवन शैली और पूरी तरह से उपभोक्तावादी रवैया अपनाया और अपनी अर्थव्यवस्था को सैन्यवाद, विशाल उद्योगों, लेन-देन और पर आधारित बनाया। बहुराष्ट्रीय व्यापार निगम, अविकसित देशों से सस्ती दरों पर कच्चे

माल का आयात और अपने माल को ऐसे देशों में निर्यात करना और अपने बहुराष्ट्रीय निगमों के माध्यम से विदेशी बाजारों पर आर्थिक कब्ज़ा करना। संक्षेप में, वे इस आर्थिक प्रणाली के आधार पर तब तक फलते-फूलते रहे जब तक अन्य औद्योगिक राष्ट्र उनके सामने मजबूती से खड़े नहीं हुए या कमजोर राष्ट्र उनके आर्थिक शोषण या अन्याय के खिलाफ खड़े नहीं हुए। फिर भी, उनकी आर्थिक व्यवस्था कुछ नैतिक रूप से सुदृढ़ और स्थायी आर्थिक सिद्धांतों पर आधारित नहीं थी।

जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, यह व्यापारिकता, प्रतिस्पर्धा, उपभोक्तावाद और कमजोर राष्ट्रों के शोषण और एक प्रतिद्वंद्वी राष्ट्र के साथ गर्म या ठंडे युद्ध पर आधारित था, या अपने राष्ट्र को दुनिया का मजबूत सैन्य-पुरुष मानने पर आधारित था, जो गर्म या शीत युद्ध के लिए तैयार था। . अब, जब कुछ अन्य औद्योगिक राष्ट्र मजबूत हो गए हैं, तो वे उनके साथ प्रतिस्पर्धा नहीं कर सकते हैं और इसलिए, उन्हें बंद करना होगा या श्रमिकों की छंटनी करनी होगी जैसा कि हाल ही में कई औद्योगिक दिग्गजों द्वारा किया गया था। इसके अलावा, अब जब कोई युद्ध नहीं है – गर्म या ठंडा – वे आर्थिक कारणों से अपने सैन्य हार्डवेयर बेचने के लिए मजबूर हैं क्योंकि उन्होंने हाल ही में श्रमिकों को रोजगार में रखने के लिए कई एशियाई देशों को लड़ाकू विमान बेचे हैं। उनके देश में या तो मंदी, या मुद्रास्फीति, या भारी कराधान की समस्याएँ थीं, या उसे अर्थव्यवस्था को चालू रखने के लिए घाटे के बजट, विदेशी ऋण, संरक्षणवादी नीतियों आदि का सहारा लेना पड़ा। इसलिए, यह उचित होता यदि भारत जैसे विकासशील देशों ने अर्थव्यवस्था के तथाकथित विकसित मॉडल की विफलताओं से कुछ सबक सीखा होता और इसके बजाय, अपने स्वयं के राष्ट्रीय लोकाचार और प्राचीन विरासत को ध्यान में रखा होता जो एक सही प्रणाली का सुझाव देता है अर्थव्यवस्था वह है जो सामाजिक न्याय पर आधारित है, और उधार लेने और घाटे के वित्तपोषण के बजाय मितव्ययिता पर आधारित है।

हमें अपनी राष्ट्रीय स्थिति को भी ध्यान में रखना चाहिए जो राष्ट्रीय और क्षेत्रीय आत्मनिर्भरता की आवश्यकता है और अपने नागरिकों को पूर्ण रोजगार के अवसर प्रदान करती है और ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था के बीच संतुलन, आय और धन के समान वितरण और बहुत व्यापक विकास की रोकथाम को बढ़ावा देती है। आय और संपत्ति में असमानता.

हमें याद रखना चाहिए कि बेलगाम उपभोक्तावाद और व्यावसायिकता और बड़े पैमाने पर उधार लेना हमारी आध्यात्मिक विरासत में अंतर्निहित मूल्य-प्रणाली के खिलाफ है और देर-सबेर हमें गंभीर आर्थिक संकट की ओर ले जाएगा। तो, आइए हम सभी सादगी और मितव्ययिता का जीवन जीना सीखें और सभी के प्रति ईमानदार और न्यायपूर्ण रहें।

आप की बात

भारत-नेपाल संबंध

नेपाल के साथ सीमा पर कुछ क्षेत्रों को लेकर विवाद नई बात नहीं है। अब नेपाल सरकार ने सौ रुपये के नए नोट पर इन विवादित क्षेत्रों को अपने देश का हिस्सा बताने वाला मानचित्र छापने का फैसला किया है। वह फैसला वाकई चौंकाने वाला है। चीन की शह पर नेपाल सरकार भारत के साथ व्यर्थ छेड़खानी कर रही है। नेपाल सरकार तथा नेपाली जनता को समझ लेना चाहिए कि बेहतर भारत-नेपाल संबंध से भारत की तुलना में नेपाल को ही अधिक लाभ होता है। नेपालियों की बड़ी संख्या रोजी-रोजगार, व्यापार तथा अन्य आर्थिक गतिविधियों के लिए भारत पर निर्भर है। भारत ने नेपाल को इसी कारण मुक्त आवागमन की सुविधा दी है। लेकिन यदि ऐसी ही स्थिति रही तो भारत सरकार को भारत-नेपाल सीमा बंद कर बिना वीजा आवागमन पर प्रतिबंध लगाना होगा। एक लंबे समय से इस छूट के कारण पाकिस्तान सहित कई दुश्मन देशों के जासूस और आतंकवादियों ने भारत-नेपाल सीमा को भारत में घुसने का सबसे सुगम रास्ता समझ लिया है। नेपाल चारों ओर भूमि से घिरा देश है और भौगोलिक परिस्थितियों के चलते चीन चाहे जितना प्रयास कर ले वह भारत का स्थान नहीं ले सकता है। नेपाली जनता को अपनी सरकार की भारत-विरोधी नीतियों का डट कर विरोध करना चाहिए।

– **विभूति बुपक्या,** खाचरोद

अखाड़े का प्रशंसनीय निर्णय

जूना अखाड़े ने अनुसूचित जाति के एक महन्त को जगद्गुरू के आसन पर आरूढ़ कर सनातन के वास्तविक स्वरूप को स्थापित करने के साथ ही उन लोगों के मुंह पर भी ताला लगाने का काम किया है जो सनातन को ऊंच-नीच और छुआछात से सना हुआ कह कर सनातन परम्पराओं का उपहास उड़ाते थे। इस निर्णय की जितनी प्रशंसा की जाए, कम है। सनातन धर्म में उपजी कुरीतियों के पीछे मुख्यतः मुस्लिम आक्रमणकारियों, शासकों और उसके बाद अंग्रेज शासकों का षड्यंत्र था। यह सनातन का मूल दर्शन नहीं है। भगवान राम का सम्पूर्ण जीवन दर्शन समानता और समरसता का दर्पण रहा है। ऐसे में जूना अखाड़ा ने भगवान श्रीराम के उन्हीं आदर्शों को आत्मसात करते हुए सनातन को गाली देने वालों को करारा जवाब दिया है। अनुसूचित जाति के महामण्डलेश्वर महेन्द्रानन्द गिरि को जगद्गुरु तथा दो अन्य को महामण्डलेश्वर बनाकर पूरे सनातन समाज में एक अनुकरणीय, प्रेरणादायी व आदर्श परम्परा स्थापित की है। अनुसूचित जाति के ये तीनों सन्त मतांतरित हुए हिन्दुओं को पुनः सनातन धर्म में लाने का का महान् कार्य कर रहे हैं। आशा है अन्य सन्त अखाड़े भी इस पवित्र मार्ग का अनुसरण करेंगे।

– **नरेन्द्र टोंक,** मेरठ

चीन का महत्व

पश्चिमी देश एवं उनके नेता भले ही लगातार चीन की आलोचना करें और निरंतर उसके मानवाधिकार रिकॉर्ड की निंदा करें, मगर चीन के बिना किसी का व्यापार पूरा नहीं होता। आज अमेरिका व चीन दुनिया की अर्थव्यवस्था में पहले और दूसरे स्थान पर हैं। उन्हें इस मुकाम तक पहुंचाने में पूरे विश्व का योगदान है। कोरोना काल के समाप्त होने के बाद चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग पहली बार फ्रांस यात्रा पर हैं। वैसे तो वर्ष 2024 चीन और फ्रांस के बीच राजनयिक संबंधों की स्थापना की 60वीं वर्षगांठ है। मगर जिनपिंग की यात्रा के पीछे मुख्यतः यूरोपियन यूनियन के साथ व्यापार पर वार्ता है। पेरिस में एमानुएल मैक्रॉन के साथ यूरोपीय आयोग की प्रमुख सुश्री उर्सुला वॉन डेर लेयेन के साथ त्रिपक्षीय बैठक प्रस्तावित है। दुनिया भर के नेता चीन के साथ कूटनीतिक एवं व्यापारिक रिश्ते को बनाए रखने के लिए मजबूर हैं। पिछले एक वर्ष से भी कम समय में अमेरिकी विदेश मंत्री अंटोनी ब्लिंकन दो बार चीन यात्रा पर जा चुके हैं। जर्मन चांसलर भी तीन दिन की चीन यात्रा पर गए थे। बिल गेट्स व एलन मस्क जैसे अमीर भी चीन जाना नहीं भूलते। इन सब से स्पष्ट है कि विश्व अर्थव्यवस्था और व्यापार में चीन का महत्व बना हुआ है।

– **जंग बहादुर सिंह,** जमशेदपुर

मिलावट के मानक

विभिन्न खाद्य पदार्थों में मिलावट का शक लगातार बढ़ता जा रहा है। कुछ भारतीय कंपनियों के मसालों में पेस्टिसाइड की अधिक मात्रा को लेकर विदेश में इन्हें बैन किया गया है। मगर भारत में इनकी बिक्री धड़ल्ले से जारी है। खाद्य निरीक्षक एफएसएसएआई का कहना है कि मसालों में कीटनाशकों की उपस्थिति भारतीय मानकों के अनुरूप है। ऐसे में सवाल उठता है कि भारतीय तथा विदेशों में खाद्य पदार्थों के मानव स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रभावों संबंधी मानकों में इतना अंतर क्यों है? क्या भारतीय खाद्य पदार्थ मानकों को विश्व स्तरीय बनाना जरूरी नहीं है? क्या भारतीयों का जीवन विदेशों और पश्चिमी देशों में रहने वालों की तुलना में कम मूल्यवान है? विडंबना है कि अनेक भारतीय कंपनियां देश और विदेशों में बेची जाने वाली खाद्य सामग्री के लिए अलग-अलग मानकों का प्रयोग करती हैं। यह तो एक प्रकार से नेस्ले जैसी कंपनी की बेहूदा नकल है जो अफ्रीका और एशिया के बाजारों में बेचे जाने वाले बच्चों के आहार में अधिक चीनी मिला देती है। खाद्य पदार्थ मानकों को सर्वोच्च बनाना जरूरी है।

– **सुभाष बुड़ावन वाला,** रतलाम

पाठक अपनी प्रतिक्रिया ई-मेल से responsemail.hindipioneer@gmail.com पर भी भेज सकते हैं।

दैनिक जागरण

शिक्षा में किए निवेश का प्रतिफल असीम होता है

बेलगाम साइबर अपराधी

इसमें संदेह है कि वित्तीय धोखाधड़ी में इस्तेमाल होने वाले 1.58 लाख फोन नंबर बंद करने के कदम से साइबर अपराधियों के हौसले पस्त होंगे। आशंका यही है कि वे झूठी सूचना या लालच देकर आनलाइन ठगी करने के लिए किसी अन्य नाम से फिर से सिम नंबर हासिल कर सकते हैं। ध्यान रहे कि सरकार को दूसरे के नाम पर चलाए जाने वाले 30 लाख से अधिक फोन नंबर ब्लाक भी करने पड़े हैं। आखिर इसकी क्या गारंटी कि आनलाइन धोखाधड़ी करने वाले फर्जी या चोरी के दस्तावेजों से फिर सिम हासिल नहीं कर पाएंगे? यदि टेलीकाम कंपनियां साइबर धोखाधड़ी में लिप्त संदिग्ध हजारों फोन नंबरों की जांच कर रही हैं तो इसका मतलब है कि अपराधी छल-कपट से सिम हासिल करने में समर्थ हैं। साइबर अपराधी लोगों को गुमराह करके ही ठगी नहीं कर रहे, बल्कि वे उन्हें ब्लैकमेल अथवा धमकाकर उनसे वसूली भी कर रहे हैं। आनलाइन ठगों के गिरोह देश के कई हिस्सों में पनप चुके हैं और वे बढ़ते ही जा रहे हैं। इसका मतलब है कि उन पर लगाम लगाने और उन्हें दंडित करने के तौर-तरीके कारगर सिद्ध नहीं हो रहे हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि साइबर अपराधी साइबर अपराध रोकने वाले तंत्र से दो हाथ आगे हैं।

समस्या केवल इतनी ही नहीं है कि साइबर अपराधी मोबाइल फोन और ईमेल के जरिये धोखाधड़ी कर रहे हैं या फिर फर्जी काल सेंटर चला रहे हैं। समस्या यह भी है कि वे कानून एवं व्यवस्था के लिए गंभीर चुनौती भी बन रहे हैं। पिछले दिनों दिल्ली और एनसीआर के कई स्कूलों में बम रखे होने की झूठी सूचना देकर हड़कंप पैदा कर दिया गया। पुलिस इस मामले की जांच कर ही रही थी कि अहमदाबाद के स्कूलों को भी इसी तरह की झूठी सूचना देकर डराया गया। माना जा रहा है कि यह शरारत विदेश में बैठे अपराधियों ने की। यदि भारतीय सुरक्षा एजेंसियां उनका पता-ठिकाना खोज भी लें तो उनके खिलाफ कार्रवाई करना कठिन है। यदि इस तरह के अपराधी किसी ऐसे देश में हों, जिसके भारत से मैत्रीपूर्ण संबंध न हों तो उनके खिलाफ कुछ कर पाना असंभव सा हो जाता है। यह एक तथ्य है कि करीब दो साल पहले दिल्ली के एम्स के सिस्टम को हैक कर अस्पताल प्रशासन और मरीजों को परेशान और उगाही करने की कोशिश करने वाले अपराधियों के खिलाफ कुछ नही किया जा सका। स्पष्ट है कि आनलाइन ठगी, ब्लैकमेलिंग, हैकिंग आदि साइबर अपराधों से निपटने के लिए भारत सरकार को और अधिक कड़े एवं प्रभावी कदम उठाने की आवश्यकता है। अभी तो स्थिति यह है कि तमाम शिकायतों के बाद भी लोगों को स्पैम काल से छुटकारा नहीं मिल पा रहा है। डिजिटल क्रांति के इस दौर में साइबर अपराधियों को बच निकलने का मौका न देने वाले ठोस उपाय अनिवार्य हो चुके हैं।

चिकित्सा सुविधाएं बढ़ें

वैसे तो बिहार में चिकित्सा सुविधाओं में लगातार सुधार हो रहा, लेकिन कई मामलों में अभी बहुत कुछ करना शेष है। पहते तो हालात यह थे कि विशेषकर सरकारी अस्पतालों में इलाज कराने के प्रति लोगों में घोर उदासीनता आ गई थी। राज्य सरकार ने लगातार इस स्थिति को बदलने के लिए प्रयास किया है। अब अच्छी खासी संख्या में लोग सरकारी अस्पतालों में इलाज कराने पहुंच रहे हैं। यह देखने की जरूरत है कि मरीजों के इलाज के लिए तय की गई सुविधाएं उन्हें मिल पा रही हैं या नहीं। दवा व चिकित्सा से संबंधित अन्य उपकरणों की सुलभता सहज है या परेशानी बनी हुई है। इसके साथ ही ट्रामा से जुड़ी सुविधाओं पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। गौर करें तो पटना एम्स के अलावा कहीं भी मानक के अनुरूप ट्रामा चिकित्सा की सुविधा उपलब्ध नहीं है। सड़कों की गुणवत्ता में वृद्धि की वजह से वाहनों की औसत रफ्तार भी बढ़ी है। हालांकि दुर्घटनाओं के मामले में बिहार देश में 14वें स्थान पर है, लेकिन इसका दूसरा पक्ष चिंता पैदा करता है। दुर्घटना के शिकार लोगों में औसत 82 प्रतिशत की मौत हो जाती है। इन मौतों पर नियंत्रण के लिए एक तो यातायात के नियमों को सख्ती से लागू करना होगा, साथ ही इलाज की गुणवत्ता भी बढ़ानी होगी। मौत की रोकथाम के लिए जरूरी है कि 50 से सौ किलोमाटर की दूरी पर एक ट्रामा सेंटर हो। इन सेंटरों में ट्रामा मरीजों के उपचार के लिए वे तमाम सुविधाएं उपलब्ध हों, जिससे मरीज की जान बचाने में मदद मिले। इन सेंटरों पर विशेषज्ञों की तैनाती भी जरूरी है। ऐसी व्यवस्था अब तक कायम नहीं हो सकी है। राज्य के 11 जिलों में ट्रामा सेंटर बनाने की कोशिश हुई, लेकिन यह मूर्त रूप नहीं ले सकी। ट्रामा के मरीजों को तुरंत उपचार की जरूरत पड़ती है। यह अवधि गोल्डन आवर कही जाती है। जितना जल्द मरीज का उपचार शुरू हो जाएगा, उसकी जान बचने की संभावना उतनी ही बढ़ जाएगी। ट्रामा सेंटरों के विकास पर गंभीरता से काम करने की जरूरत है।

चिंतित करने वाले चुनावी वादे

ए. सूर्यप्रकाश

ऐसा लगता है कि आइएनडीआइए के घटक दलों के चुनावी घोषणा पत्र ऐसे लोगों ने तैयार किए हैं, जिन्हें देश के सामाजिक, आर्थिक एवं रणनीतिक हितों की कोई समझ नहीं

अवधेश राजपूत

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी और भाजपा से मुकाबले के लिए गठित विपक्षी पार्टियों के मोर्चे आइएनडीआइए के घटक दलों के चुनावी घोषणा पत्र जिम्मेदार एवं जवाबदेह शासन व्यवस्था के वादों के बजाय अनाप-शनाप घोषणाओं से भरे हुए हैं। इनमें से कुछ घोषणाएं तो राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरे में डालने वाली हैं। जबकि रेवड़ियों का एलान देश की आर्थिक बेहतरी की राह में अवरोध खड़े कर सकता है। कांग्रेस, माकपा को छोड़ दिया जाए तो अन्य घटक दल जाति आधारित या क्षेत्र विशेष केंद्रित राजनीतिक दल हैं, जिन्हें देश की समग्र बेहतरी से कहीं अधिक अपने राज्यों और प्रभाव क्षेत्रों की ही फिक्र है। ऐसा लगता है कि आइएनडीआइए के घटक दलों का घोषणा पत्र ऐसे लोगों ने तैयार किया है, जिन्हें देश के सामाजिक, आर्थिक एवं रणनीतिक हितों की कोई समझ नहीं। कई वादों में गैर-जिम्मेदाराना रवैया भी जाहिर होता है।

माकपा ने देश को परमाणु हथियारों से मुक्त करने की बात कही है। वह भी तब जबकि भारत की सीमा पर चीन और पाकिस्तान जैसे बिगड़ैल पड़ोसी और परमाणु हथियारों के जखीरे वाले देश हैं। ऐसे में देश को परमाणु हथियारों से विहीन करने का क्या तुक है? इंदिरा गांधी के दौर में पहला परमाणु परीक्षण करने वाली कांग्रेस का रुख क्या माकपा के साथ है? माकपा का एक और खतरनाक प्रस्ताव भारत-अमेरिका डिफेंस फ्रेमवर्क एग्रीमेंट और क्वाड से बाहर आने का है। याद रहे भारत, अमेरिका, जापान और आस्ट्रेलिया को मिलाकर बना क्वाड संगठन हिंद-प्रशांत क्षेत्र में चीन की विस्तारवादी नीतियों को चुनौती दे रहा है। भारत पूर्वी, दक्षिणी और पश्चिमी सीमा पर सागर से घिरा है और चीन का नौसैन्य विस्तार उसके लिए जोखिम बढ़ा रहा है। ऐसे में भारत का कोई हितैषी क्या क्वाड से बाहर आने का सुझाव देगा? माकपा का एक और घातक प्रस्ताव अनुच्छेद-370 की बहाली का है। किसी भी दल के ऐसे प्रस्ताव देश को सैन्य रूप से कमजोर करने के साथ ही उसकी एकता एवं अखंडता को खंडित करने वाले हैं। हम भारतीय वामपंथियों के चीनी प्रेम से भलीभांति अवगत हैं, लेकिन ऐसा कभी नहीं सोचा कि वे इस हद तक चले जाएंगे कि अपने देश को कमजोर और पड़ोसी देश को मजबूत बनाने की सोचने लगेंगे। इस मामले में भारत की सबसे पुरानी पार्टी कांग्रेस का रवैया और सवाल खड़े करने वाला है, जो माकपा के साथ खड़ी हुई है। अगर यह गठबंधन किसी प्रकार सत्ता में आ गया तो भारत की राष्ट्रीय सुरक्षा परिदृश्य की सहज ही कल्पना की जा सकती है।

कांग्रेस ने अपने घोषणा पत्र में राष्ट्रव्यापी सामाजिक-आर्थिक सर्वे और जातिगत जनगणना कराने की बात कही है। घोषणा पत्र के अनुसार इससे प्राप्त डाटा 'अफर्मेटिव एक्शन के एजेंडे को मजबूती प्रदान करेगा।' इसका क्या अर्थ है? राहुल गांधी ने सार्वजनिक रूप से कहा कि पूरे देश का एक्स रे (सामाजिक-आर्थिक सर्वे) कराकर दूध का दूध और पानी का पानी हो जाएगा। राहुल गांधी ने इसके बाद वित्तीय एवं संस्थागत सर्वे कराने की घोषणा के साथ ही यह भी कहा कि तब एक क्रांतिकारी कदम उठाया जाएगा और एससी-एसटी, ओबीसी और अल्पसंख्यकों को उनका वास्तविक हक दिया जाएगा। दूसरे शब्दों में कहें तो उनकी पार्टी धन के पुनर्वितरण जैसा ऐतिहासिक कदम उठाने की बात कर रही है। उन्होंने यह भी कहा कि जातिगत जनगणना इस एक्सरे का पहला चरण होगा। फिर जिस समुदाय की जितनी आबादी होगी, उसका उतना हक होगा। माकपा और राजद जैसे सहयोगी दलों ने भी जातीय जनगणना का समर्थन किया है। राजद ने अपने घोषणा पत्र में 24 वादे किए हैं। इनमें से कुछ राष्ट्रीय दायरे वाले हैं तो अधिकांश बिहार केंद्रित। राजद का दावा है कि यदि आइएनडीआइए की सरकार बनी तो बिहार को विशेष राज्य के दर्जे के साथ ही 1.6 लाख करोड़ रुपये का विशेष पैकेज दिया जाएगा। पार्टी ने राज्य में पांच नए हवाई अड्डे और जनता को हर महीने 200 यूनिट मुफ्त बिजली देने का वादा किया है। एक सामान्य प्रकार का वादा 'गरीब परिवार की बहनों' को हर साल का रक्षाबंधन के दिन एक लाख रुपये देने का है। कांग्रेस ने भी अपने घोषणा पत्र में प्रत्येक गरीब परिवार को महालक्ष्मी योजना के अंतर्गत एक लाख रुपये सालाना देने की बात कही है। पार्टी ने कहा है कि यह योजना चरणबद्ध रूप से लागू की जाएगी। इसे अमल में लाने की चाहे जो योजना हो, लेकिन क्या कांग्रेस पार्टी ने ऐसे वादे की कीमत के बारे में भी कुछ सोचा और क्या इस पर विचार किया कि क्या देश इसका आर्थिक बोझ उठा सकता है? राजद ने एक करोड़ नौकरियों का वादा भी किया है। इसमें केंद्र सरकार के स्तर पर 30 लाख रिक्तियों को भरने के साथ ही 70 लाख नई नौकरियां सृजित की जाएंगी। इसके साथ ही गरीबों को 500 रुपये में गैस सिलेंडर, अग्निवीर योजना की समाप्ति और पुरानी पेंशन योजना यानी ओपीएस की बहाली का भी वादा है।

बड़े-बड़े वादों में द्रमुक भी पीछे नहीं है। पार्टी ने परिवार की एक महिला को हर महीने एक हजार रुपये और 500 रुपये में गैस सिलेंडर देने का वादा किया है। उसका एक वादा बड़ा दिलचस्प है कि अगर वह सत्ता में आती है तो पेट्रोल की कीमत 75 रुपये प्रति लीटर और डीजल की कीमत 65 रुपये प्रति लीटर तय की जाएगी। अन्य सहयोगी दलों की तरह द्रमुक ने भी वादा किया है कि नागरिकता संशोधन अधिनियम यानी सीएए और समान नागरिक संहिता पर अमल नहीं किया जाएगा। इस प्रकार देखें तो इस गठबंधन के घटक दल ही समग्रता में एकमत नहीं कि सत्ता में आने पर यह गठजोड़ क्या करेगा। उनके वादे टुकड़े-टुकड़े मानसिकता वाले खतरनाक इरादों से कुप्रेरित लगते हैं। ऐसे में लोगों को सोचना होगा कि क्या वे ऐसे असंगत और सत्ता के लिए व्यग्र दलों के गठजोड़ को वोट देंगे या नहीं। यदि इन दलों का यह गठबंधन सत्ता में आया तो क्या देश सुरक्षित रहेगा?

(लेखक लोकतांत्रिक विषयों के विशेषज्ञ एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

response@jagran.com

सुप्रीम कोर्ट में पंथनिरपेक्षता की परीक्षा

राजीव सचान

एक्स मुस्लिम साफिया का मामला यह तय करेगा कि देश में पंथनिरपेक्ष कानूनों की चलेगी या फिर शरीयत की?

विरासत टैक्स पर राजनीतिक दलों में तकरार के बीच विरासत में हिस्सेदारी का एक ऐसा मामला सुप्रीम कोर्ट पहुंचा है, जो पंथनिरपेक्षता की परीक्षा लेगा। यह मामला है केरल की साफिया का। वह मुस्लिम परिवार में जन्मीं, लेकिन न तो उनके पिता इस्लाम का पालन करते हैं और न ही वह। यही नहीं, वह स्वयं को एक्स मुस्लिम कहती हैं और एक्स मुस्लिम आफ केरल नामक संगठन की महासचिव हैं। यह इस्लाम छोड़ चुके लोगों का संगठन है, जो हर वर्ष नौ जनवरी को एक्स मुस्लिम दिवस मनाता है। इस संगठन के सदस्य लगातार बढ़ रहे हैं। ऐसे संगठन दुनिया भर में हैं, लेकिन एक्स मुस्लिम आफ केरल इस्लाम छोड़ने वालों का भारत का पहला संगठन है। एक्स मुस्लिम इसे खारिज करते हैं कि कोई खुदा है, जिसने सारी दुनिया बनाई और वही उसे चलाता है। कुछ एक्स मुस्लिम ऐसे भी हैं, जो स्वयं को एथिस्ट-नास्तिक के बजाय एग्नास्टिक बताते हैं। एग्नास्टिक यानी ऐसा व्यक्ति, जो यह समझता है कि हो सकता है कोई अल्लाह-ईश्वर हो, लेकिन यदि ऐसा है भी तो उसकी इबादत-पूजा करने की कोई जरूरत नहीं।

साफिया एक्स मुस्लिम इसलिए बनीं, क्योंकि उनका मानना है कि इस्लाम महिलाओं को अधिकार नहीं देता और उनसे भेदभाव भी करता है। इस्लामी देशों और यहां तक कि भारत जैसे देश में भी किसी आम मुस्लिम का इस्लाम छोड़ना सामान्य बात नहीं, क्योंकि इस्लामी मान्यताएं इसकी इजाजत नहीं देतीं और कुछ तो मुर्तद-काफिर करार देकर उन्हें कत्ल के काबिल भी बताती हैं। अपने देश में जावेद अख्तर, तसलीमा नसरीन जैसे नामी लोग तो खुलेआम खुद को नास्तिक कहते हैं, लेकिन आम मुस्लिम इस्लाम छोड़ देने के बाद भी ऐसा कहने का साहस नहीं जुटा पाते, क्योंकि उन्हें अपने समुदाय के बहिष्कार और तिरस्कार का सामना करना पड़ता है। यदि वे इस्लामी मान्यताओं की आलोचना या इस्लाम में सुधार की पैरवी करें तो फिर उनका जीना दूभर हो जाता है और उनकी सुरक्षा के लिए खतरा बढ़ जाता है। इसके बाद भी अन्य देशों की तरह भारत में भी इस्लाम छोड़ने वालों की संख्या तेजी से बढ़ रही है। इनमें से कुछ अपने यूट्यूब चैनल भी चलाते हैं, जैसे एक्स मुस्लिम साहिल, समीर,

सुप्रीम कोर्ट के फैसले का इंतजार। फाइल

जफर हेरेटिक, कुरानवाला, इमरोज आलम आदि। उनसे प्रभावित होकर एर्जेल, रब्बानी जैसी एक्स मुस्लिम महिलाएं भी अपने यूट्यूब चैनल चला रही हैं। अधिकांश एक्स मुस्लिम यूट्यूबर पहचान और चेहरा छिपाकर रखते हैं। उनके यूट्यूब चैनल इस आधार पर प्रायः बैन, शैडो बैन या डिमोनेटाइज होते रहते हैं कि वे ब्लासफेमी कर रहे हैं। फ्री स्पीच का परचम उठाने वाला सोशल नेटवर्क प्लेटफार्म एक्स मुस्लिमों के प्रति जरूरत से ज्यादा अनुदार है। यहां कई बार फ्री स्पीच के बजाय ब्लासफेमी को तरजीह मिलती है। तमाम जोखिम और बाधाओं के बाद भी एक्स मुस्लिम एक्टिविस्ट की कोशिश एक आंदोलन का शक्ल ले रही है और वह भी तब, जब सरकारें न तो उनकी कोई सुध ले रही हैं और न ही ऐसे जतन कर रही हैं कि अन्य पंथों को छोड़ने वाले लोगों की तरह न तो उनकी आवाज दबाई जाए और न ही उनकी सुरक्षा को कोई खतरा पैदा हो।

साफिया एक ऐसी एक्स मुस्लिम हैं, जो अपनी पहचान और चेहरा छिपाए बगैर सक्रिय हैं। उन्हें सुप्रीम कोर्ट का दरवाजा इसलिए खटखटाना पड़ा, क्योंकि शरीयत कानूनों के चलते उनके पिता उन्हें आधी संपत्ति का हिस्सेदार नहीं बना सकते। उन्हें आशंका है कि यदि आनुवांशिक बीमारी-डाउन सिंड्रोम से ग्रस्त उनके भाई को कुछ हो जाता है तो उसके हिस्से की दो तिहाई संपत्ति उन्हें मिलने के बजाय उनके रिश्तेदारों को चली जाएगी। शरीयत के अनुसार बेटी का पिता की विरासत में एक तिहाई और बेटे को दो तिहाई का अधिकार होता है। शरीयत के चलते मुसलमानों पर भारतीय उत्तराधिकार कानून लागू नहीं होता। साफिया चाहती हैं कि जब वह इस्लाम छोड़ चुकी हैं और पिता भी इस्लाम नहीं मानते, तब उनकी संपत्ति का बंटवारा पंथनिरपेक्ष कानून यानी भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम के तहत किया जाए। सुप्रीम कोर्ट उनकी इस याचिका पर विचार करने के लिए सहमत हो गया है। उसने केरल और भारत सरकार को नोटिस जारी कर उनकी राय पूछी है। पता नहीं उनकी राय क्या होगी, लेकिन इसके पूरे आसार हैं कि मुस्लिम पर्सनल ला बोर्ड जैसे संगठन यह कहने के लिए सुप्रीम कोर्ट पहुंच सकते हैं कि शरीयत में कोई छेड़छाड़ नहीं होनी चाहिए। शरीयत में छेडछाड़ का हल्ला मचाकर ही इन संगठनों ने राजीव गांधी सरकार पर दबाव बनाकर शाहबानो मामले में सुप्रीम कोर्ट के फैसले को पलटवाया था। हालांकि तीन तलाक मामले में उनकी नहीं चली, लेकिन वे अभी भी सुप्रीम कोर्ट के फैसले को स्वीकार करने में आनाकानी कर रहे हैं।

एक्स मुस्लिम साफिया का मामला तय करेगा कि सुप्रीम कोर्ट में पंथनिरपेक्ष कानूनों को प्राथमिकता मिलेगी या फिर शरीयत के उन कानूनों को, जो मुस्लिम महिलाओं की अनदेखी-उपेक्षा का जरिया बने हुए हैं। कोर्ट का फैसला न केवल यह बताएगा कि देश संविधान से चलेगा या शरीयत से, बल्कि यह भी कि कोई अपना मजहब छोड़ने के बाद भी मजहबी कानूनों की जकड़न से बच पाएगा या नहीं? स्पष्ट है एक्स मुस्लिम ही नहीं, महिला अधिकारों के लिए संघर्षरत संगठन भी सुप्रीम कोर्ट की ओर देख रहे हैं। यह मामला समान नागरिक संहिता की आवश्यकता को भी रेखांकित कर रहा है, लेकिन यह तय है कि खुद को सेक्युलर-लिबरल कहने वाले इस संहिता का विरोध करना छोड़ने वाले नहीं हैं।

(लेखक दैनिक जागरण में एसोसिएट एडिटर हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

मुस्कान

मुस्कान में बड़ी शक्ति मानी गई है। एक चीनी कहावत है-अपनी मुस्कान का इस्तेमाल दुनिया बदलने के लिए करो, दुनिया को अपनी मुस्कान बदलने मत दो। वस्तुतः, हमारा चेहरा हमारे दिल का आईना होता है, क्योंकि जो दिल में है वह चेहरे पर झलके हुए बिना नहीं रह पाता। हालांकि वास्तविक रूप से हंसना तो अकेले में हंसना होता है। नियति जब हमें रोने के सौ कारण दे तो उसे दिखा दें कि हमारे पास भी मुस्कुराने की हजार वजह हैं। मुस्कान हमारे दिल के झरोखे से आती हुई वह रोशनी है जो बताती है कि अंदर सबका ध्यान रखने और सबके लिए उपलब्ध रहने वाला व्यक्ति है। चेहरे की मुस्कान से यह समझा जाता है कि सामने वाले व्यक्ति की प्रकृति कैसी है।

कहते हैं कि बच्चे की मुस्कान तमाम चिंताओं को पल भर में दूर करने की क्षमता रखती है। कभी-कभी दर्द, गुस्से और खीझ या कभी बेचैनी को छुपाने के लिए मुस्कुराहट एक पर्दे का काम भी करती है। यही मुस्कुराहट किसी की खुशी की वजह बन जाती है तो कभी-कभी हमारा दर्द भी मुस्कुराहट बनकर चेहरे पर आ जाता है। हर एक मुस्कान को पढ़ना आसान नहीं। मुस्कान में आंखों की जुगलबंदी मायने रखती है। कहते हैं कि जब हम दिल से मुस्कुराते हैं तो हमारी आंखें भी मुस्कुराती हैं, लेकिन जब हम बनावटी तौर पर मुस्कुराते हैं तो आंखें हमारा साथ नहीं देतीं। हम जिन लोगों से हर रोज मिलते हैं, उनके चेहरे के आकार-प्रकार और हाव-भाव हमारे अंतस में एक गहरी छाप छोड़ देते हैं।

हमारे जीवन में कैसी भी परिस्थिति हो, उसका मुस्कुराहट के साथ सामना करना ही श्रेयस्कर माना जाता है। जब भी मुस्कुराने का मन हो तो खुलकर मुस्कुराना चाहिए। हम इस तरह मुस्कुराने की आदत डालें कि परिस्थितियां भी हमें परेशान करके थक जाएं और जाते-जाते जिंदगी भी मुस्कुराकर बोले कि 'आप से मिलकर खुशी हुई।'

डा. निर्मल जैन

भोजन की बर्बादी चिंताजनक

सुधीर कुमार

भोजन की बर्बादी सिर्फ सामाजिक या मानवीय चिंता का विषय नहीं है। पर्यावरणीय दृष्टि से भी यह चिंताजनक है

संयुक्त राष्ट्र पर्यावरण कार्यक्रम की खाद्य अपशिष्ट सूचकांक रिपोर्ट-2024 के मुताबिक, 2022 में दुनियाभर में कुल 1.05 टन खाना बर्बाद हुआ, जिसमें से 60 प्रतिशत खाना घरों से, 2.8 प्रतिशत होटलों और 13 प्रतिशत खाना खुदरा क्षेत्र से बर्बाद हुआ। आंकड़ों के अनुसार, 2022 में वैश्विक खाद्य उत्पादन का करीबन 17 प्रतिशत हिस्सा उपभोग के बजाय बर्बादी की भेंट चढ़ गया। हैरत की बात है कि वैश्विक स्तर पर एक व्यक्ति एक साल में 132 किलोग्राम भोजन बर्बाद कर देता है। भोजन की बर्बादी के मामले में भारत की स्थिति अन्य दक्षिणी एशियाई देशों के मुकाबले थोड़ी ठीक है, लेकिन अपने यहां एक व्यक्ति सालभर में तकरीबन 55 किलोग्राम भोजन व्यर्थ कर देता है। जबकि पड़ोसी देश मालदीव में एक व्यक्ति सालभर में औसतन 207 किलोग्राम, अफगानिस्तान में 127, पाकिस्तान में 130, नेपाल में 93, बांग्लादेश में 82, श्रीलंका में 76 और भूटान में 19 किलोग्राम भोजन बर्बाद करता है।

भोजन की बर्बादी सिर्फ सामाजिक या मानवीय चिंता का विषय नहीं है। पर्यावरणीय दृष्टि से भी यह चिंताजनक है। भोजन की बर्बादी सिर्फ उसे उत्पादित करने में शामिल ऊर्जा, ईंधन और पानी की बर्बादी के साथ-साथ उसके संग्रहण, पैकेजिंग और परिवहन में सम्मिलित ऊर्जा और श्रम की भी बर्बादी मानी जाती है। लैंडफिल में भोजन की हानि और अपशिष्ट के निपटान से ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन होता है, जो जलवायु परिवर्तन के लिए खतरा उत्पन्न करता है। क्योंकि इस प्रक्रिया में मिथेन गैस का उत्सर्जन होता है, जो कार्बन डाईआक्साइड से पच्चीस गुना अधिक शक्तिशाली ग्रीनहाउस गैस है। एक बार वातावरण में मिथेन गैस आता है तो वह 12 वर्षों तक वहां रहता है और ग्लोबल वार्मिंग में योगदान देता है। अगर हम खाना बर्बाद करना बंद कर दें, तो वैश्विक ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन में आठ-10 प्रतिशत की कमी आ सकती है, जो व्यर्थ किए गए भोजन से संबंधित होता है। अंतरराष्ट्रीय कृषि अनुसंधान पर सलाहकार समूह की मानें तो यदि खाद्य अपशिष्ट एक देश होता, तो इसका ग्रीनहाउस गैस उत्सर्जन अमेरिका और चीन के बाद दुनिया में तीसरा सबसे बड़ा होता।

भोजन की बर्बादी आधुनिक होते समाज के लिए अभिशाप है। यह हमारी संवेदनहीनता और उपलब्ध खाद्य संसाधन के कुप्रबंधन को भी दर्शाता है। अगर भोजन की बर्बादी इसी तरह होती रही तो 2030 तक दुनियाभर में भुखमरी उन्मूलन के लिए संयुक्त राष्ट्र द्वारा लक्षित 'जीरो हंगर' का लक्ष्य हासिल करना और भी मुश्किल हो जाएगा। अतः भोजन की बर्बादी की प्रवृति बदलनी ही होगी।

(लेखक बीएचयू में शोधार्थी हैं)

मेलबाक्स

जनता भी बने जागरूक

'लाइलाज हुई दलबदल की बीमारी' शीर्षक से प्रकाशित आलेख में राज कुमार सिंह ने समकालीन भारतीय राजनीति की कुछ विकृतियों से परिचित कराया है, जिसमें दलबदल भी एक बड़ी समस्या के रूप में उभरा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि दलबदल एक गंभीर राजनीतिक विकृति बन गई है और इससे जुड़े कानून को और सख्त बनाने की मांग समय-समय पर होती भी रही है। यह नैतिक रूप से सही नहीं कहा जा सकता कि एक दिन पहले तक किसी राजनीतिक दल में कमियां गिनाने वाले नेता अगले दिन उसी पार्टी का हिस्सा बनकर उसकी प्रशंसा के पुल बांधने लगें। ऐसा नहीं कि देश की जनता उनकी इस चतुराई को समझती नहीं, लेकिन ऐसे दलबदलू नेताओं के राजनीतिक वजूद को बनाए रखने में जनता भी उतनी ही जिम्मेदार है। चुनावी दौर में तमाम ऐसी खबरें पढ़ने को मिलती हैं कि महंगाई, बेरोजगारी और बुनियादी सुविधाएं जनता के बीच बड़ा मुद्दा होती हैं, लेकिन जाति, धर्म और क्षेत्र जैसे पहलू इन बिंदुओं पर भारी पड़ते हैं। कुछ नेता अपनी जाति, धर्म और क्षेत्र के नाम पर अपना राजनीतिक अस्तित्व बनाए रखकर राजनीतिक दलों से सौदेबाजी करते रहते हैं। ऐसे में जनता को भी इस पहलू को ध्यान में रखना होगा। उसे और जागरूक बनना होगा। दलबदल निरोधक कानून एक अच्छी एवं समयानुकूल पहल अवश्य रही है, लेकिन इसमें भी कुछ खामियां हैं। इसमें जनप्रतिनिधियों की निजी राय का कोई खास मूल्य-महत्व नहीं रह गया है और वे संबंधित राजनीतिक दल की अनुकंपा पर आधारित होकर उनके अनुयायी बनकर रह गए हैं। दलों के भीतर आंतरिक लोकतंत्र के संदर्भ में भी इसे लेकर सवाल उठाए जा रहे हैं। ऐसे में यदि इस कानून में किसी प्रकार के संशोधन की पहल की जाने वाली हो तो उसमें समग्र पहलुओं का ध्यान रखकर ही आगे बढ़ा जाए।

रवि वार्ष्णेय, बुलंदशहर

देश को ठगने का मामला

प्रवर्तन निदेशालय द्वारा हाल में ही झारखंड के कांग्रेस नेता और ग्रामीण विकास मंत्री आलमगीर आलम के निजी सचिव के रांची स्थित घरेलू सहायक के घर से 35 करोड़ रुपये से ज्यादा की नकदी बरामद की गई है। यह बहुत बड़े घोटाला का संकेत है। ऐसा लगता है कि काले धन का इस्तेमाल आम लोकसभा चुनावों में किया जाना था, लेकिन प्रवर्तन निदेशालय ने छापा मारकर भ्रष्टाचारी नेताओं की दाल नहीं गलने दी। राजमहल लोकसभा सीट के तहत पाकुड़ विधानसभा क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करने वाले आलमगीर आलम मीडिया के सामने अब चाहे कोई सफाई दें, ये मामला तो देश को झूंट से ठगने का मामला प्रतीत हो रहा है। अपराध से अर्जित आय की बदौलत कुछ राजनेता रइसी ठाट-बाट से मौज कर रहें हैं और बड़ी बेशर्मी से राज्य के खजाने एवं जनता की गाढ़ी कमाई को निचोड़ रहे हैं।

युगल किशोर शर्मा, फरीदाबाद

भारत विरोधियों के साथ विपक्ष

दिल्ली के मुख्यमंत्री अरविंद केजरीवाल पर आतंकी संगठन सिख फार जस्टिस से 1993 के दिल्ली बम कांड के दोषी देवेंद्र पाल सिंह भुल्लर की रिहाई के बदले 134 करोड़ रुपये चंदा लेने का आरोप गंभीर है। उधर जम्मू-कश्मीर के पूर्व मुख्यमंत्री फारूक अब्दुल्ला सरकार को भारत के सबसे बड़े शत्रु पाकिस्तान से बात करने के लिए दबाव डाला रहे हैं और डर भी दिखा रहे हैं कि पाकिस्तान के पास परमाणु बम हैं एवं उसने चूड़ियां नहीं पहनी हैं। शायद वह जम्मू-कश्मीर विधानसभा में पारित प्रस्ताव को भूल गए हैं, जिसमें गुलाम कश्मीर को वापस लेने का प्रण लिया गया है। पंजाब के पूर्व मुख्यमंत्री चरणजीत सिंह चन्नी और शशि थरूर का सेना का मनोबल गिराने का बयान विपक्ष की राजनीतिक अधोगति की पराकाष्ठा है। वैसे भी कांग्रेस ने टुकड़े-टुकड़े गैंग के हीरो को चुनाव में उतारा है। ऐसे विपक्ष पर जनता कैसे विश्वास करे, जो भारत के विखंडन का षड्यंत्र रचने वालों के साथ हों और विदेशी धरती से मोदी के विरुद्ध चुनाव प्रचार करें।

विनोद जौहरी, दिल्ली

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।
अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल: mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. नॉन एग्जीक्यूटिव चेयरमैन-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित और उन्हीं के द्वारा डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित, संपादक (राष्ट्रीय संस्करण) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष: नई दिल्ली कार्यालय: 011-43166300, नोएडा कार्यालय: 0120-4615800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No. DELHIN/2017/74721 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई/रेल शुल्क ₹-2 अतिरिक्त।
****

71.05 प्रतिशत भूभाग वन क्षेत्र है उत्तराखंड का। देश के पर्यावरण के संरक्षण में इस दृष्टिकोण से प्रदेश की महत्वपूर्ण भूमिका है।

आजकल

कोरोना रोधी वैक्सीन पर अनावश्यक संदेह

कोविड रोधी एक वैक्सीन (कोविशील्ड) की ब्रिटिश निर्माता कंपनी आक्सफोर्ड-एस्ट्राजेनेका ने हाल में एक मामले में स्वीकार किया कि कुछ संदर्भों में वैक्सीन के साइड इफेक्ट हो सकते हैं, तो पूरी दुनिया जैसे सदमे में आ गई। ऐसे मामलों को अफवाहों के बजाय अगर तथ्यों की रोशनी में देखें तो साइड इफेक्ट का खतरा नगण्य ही नजर आता है। अलबत्ता इससे कई हजार गुना खतरा तब पैदा होता, जब लोग सारे तथ्यों को जानते हुए भी कोरोना से बचाव करने वाली वैक्सीनों से परहेज करते

अभिषेक कुमार सिंह
संस्था-टेली परफार्मेंस से संबद्ध

कोरोना रोधी वैक्सीन ने बचाई करोड़ों लोगों की जान। प्रतीकात्मक

कोरोना से बचाव को भारत समेत पूरी दुनिया में चले व्यापक टीकाकरण कार्यक्रम के संदर्भ में देखें तो ऐसे दावे बेमानी नहीं लगते कि वैक्सीनों के थोड़े-बहुत साइड इफेक्ट हो सकते हैं। इधर जब कोविड-19 से बचाव की एक वैक्सीन (कोविशील्ड) की ब्रिटिश निर्माता कंपनी आक्सफोर्ड-एस्ट्राजेनेका ने एक मुकदमे के मामले में स्वीकार किया कि कुछ संदर्भों में वैक्सीन के साइड इफेक्ट हो सकते हैं, तो पूरी दुनिया जैसे सदमे में आ गई। कोविशील्ड पर बहस थमने से पहले एक अन्य टीका-कोवैक्सीन बनाने वाली कंपनी भारत बायोटेक ने कहा कि उसकी वैक्सीन पूरी तरह सुरक्षित है, क्योंकि उसे 27 हजार से ज्यादा लोगों पर परीक्षण किया गया था। ऐसे परीक्षण कोविशील्ड पर भी किए गए थे, लेकिन इससे खून के थक्के जमना, थ्रोंबोसिस विथ थ्रोंबोसायटोपीनिया सिंड्रोम (टीटीएस) और पेरिकार्डिटिस जैसे साइड इफेक्ट की चर्चा का उठना बताता है कि ऐसे मामलों को अफवाहों के बजाय तथ्यों की रोशनी में देखना ज्यादा जरूरी है।

साइड इफेक्ट के मामलों की जांच : कोरोना रोधी टीकाकरण के आरंभिक चरण में आस्ट्रिया, कनाडा, नार्वे, आइसलैंड, बुल्गारिया, नीदरलैंड, फ्रांस, जर्मनी, इटली, स्पेन, स्वीडन और थाइलैंड आदि देशों ने कोविशील्ड के टीकों के लंबे समय तक इस्तेमाल पर रोक लगा रखी थी। इसकी एक बड़ी वजह यह थी कि वर्ष 2020 से 2022 के बीच दुनिया भर में चलाए गए टीकाकरण कार्यक्रम के दौरान ऐसी चर्चाएं थीं कि ये टीके लेने के बाद लोगों को ब्रेक-थ्रू इंफेक्शन हो सकता है। बाद में यह दावा झूठा साबित हुआ। बहरहाल इन चर्चाओं के उठने के बाद दो साल से ज्यादा वक्त गुजर चुका है। ब्रिटेन में भी आक्सफोर्ड-एस्ट्राजेनेका जिस मुकदमे का सामना कर रही है, उस मामले में साइड इफेक्ट की घटना वैक्सीन लेने के फौरन बाद की है। टीकाकरण के शुरुआती चरण में वैक्सीनों के साइड इफेक्ट्स पर सवाल उठने पर भारत सरकार की ओर से एक पैनल बनाया गया था। उसने सैकड़ों मामलों में से 31 दावों की जांच की। जांच से पहले दावा किया गया था कि इनमें से 28 लोगों की मौत कोविड संबंधी टीका (कोविशील्ड या कोवैक्सीन) लेने के बाद पैदा हुए दुष्प्रभावों से हुई थी। 2021 में जांच-पड़ताल के बाद पैनल ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि 28 लोगों में से सिर्फ एक के बारे में कहा जा सकता है कि मृत्यु टीकाकरण की वजह से हुई। इसी तरह पैनल ने तीन लोगों में वैक्सीन के अन्य दुष्प्रभावों- एनाफिलाक्सिस (वैक्सीन रिलेटिड रिएक्शन) पर अपनी मुहर लगाई थी। उनमें से एक 68 साल के व्यक्ति की मौत टीका लगाने के बाद एनाफिलाक्सिस से हुई थी। एनाफिलाक्सिस एक तरह का एलर्जिक रिएक्शन है, जिसे वैक्सीन के साइड इफेक्ट की श्रेणी में रखा जा सकता है। जो दो अन्य लोग इसी एलर्जी के शिकार हुए थे, वे अस्पतालों में भर्ती कराए जाने के बाद स्वस्थ हो गए थे। इन दोनों लोगों को 16 और 19 जनवरी, 2021 को वैक्सीन दी गई थी। उन दोनों की उम्र 20 से 30 साल के बीच थी। टीके की एक या दोनों डोज लेने के बाद भी अगर किसी को कोरोना संक्रमण हो जाए, तो इसे 'ब्रेक-थ्रू इंफेक्शन' कहा जाता है। एक आकलन है कि भारत में प्रति 10 हजार वैक्सीनेशन में ऐसे दो-तीन मामले देखने को मिले थे। सिर्फ भारत ही नहीं, दुनिया के कई अन्य मुल्कों में ब्रेक-थ्रू इंफेक्शन के मामले सामने आए थे। जैसे अमेरिका में अप्रैल 2021 तक जिन 95 लाख लोगों का टीकाकरण हुआ था, उनमें से 9,045 लोगों में 'ब्रेक-थ्रू इंफेक्शन' हुआ। इसके अलावा 835 लोगों यानी करीब नौ प्रतिशत लोगों को अस्पतालों में भर्ती कराना पड़ा था। इनमें से एक प्रतिशत मरीजों की हालत गंभीर बताई गई, बाद में उनमें से कुछ की मौत हो गई थी।

टीका लेने वालों पर क्या खतरा : बहरहाल ब्रिटेन का मामला प्रकाश में आने के बाद अब बड़ा सवाल यह है कि कोविड की वैक्सीनों के साइड इफेक्ट की बात आखिर कितनी सच है। और क्या अब सच में उन लोगों को भयभीत होने की जरूरत है जिन्होंने कोई भी कोविड रोधी वैक्सीन ली है। जिस तरह से पिछले दो-तीन साल के अंतराल में तमाम युवाओं के नाचते-गाते, जिम में कसरत करते या घूमते-टहलते मौत होने के वाकये सामने आए हैं, उससे हर किसी के मन में पहला शक कोविड रोधी वैक्सीनों पर ही जाता है। हो सकता है कि आगे चलकर विज्ञानी इन मामलों की तह में जाएं और सच को सामने लाएं, पर अभी ध्यान रखना होगा कि कोविड रोधी वैक्सीनों का प्राथमिक उद्देश्य कोरोना संक्रमण से बचाव करना था। ऐसे में यह मामला वैक्सीन से मिलने वाली सुरक्षा बनाम वैक्सीन के कारगर होने का बनता है। उल्लेखनीय है कि दुनिया की किसी भी वैक्सीन से कोविड से सुरक्षा का सौ प्रतिशत दावा नहीं किया गया है। चूंकि सभी टीकों के ट्रायल नियंत्रित स्थितियों में किए गए थे, इसलिए हकीकत में उनके इस्तेमाल पर नतीजे अलग आ सकते हैं। यह भी ध्यान रखना होगा कि वैक्सीन के कारगर होने का पता उसे बड़ी आबादी को लगाने के बाद चलता है। वैक्सीन को एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाने-ले जाने, उसके भंडारण की स्थितियों और उसे लगाने एवं लगवाने वालों पर किसी का वैसा नियंत्रण नहीं होता, जैसा ट्रायल के वक्त होता है। इसलिए वैक्सीन कितनी कारगर है-इसे लेकर अंतर आ जाता है। इन्हीं कारणों से वैक्सीन की गुणवत्ता में ट्रायल के मुकाबले काफी फर्क और कुछ प्रतिशत तक दुष्प्रभाव तक देखने को मिलते हैं, लेकिन क्या वैक्सीनों ने सच में लोगों की जान ली है? इस सवाल का एक ठोस जवाब आंकड़े दे सकते हैं। सरकार के आंकड़ों के मुताबिक देश में जून 2021 तक जिन 23.5 करोड़ लोगों को कोरोनारोधी वैक्सीन लगी थी, उनमें से टीकाकरण के बाद बीमार होने वालों की संख्या 26 हजार थी। इनमें से 488 लोगों की मौत का दावा किया गया था, लेकिन ऐसे ज्यादातर लोग या तो पहले से अन्य गंभीर बीमारियों से पीड़ित थे या फिर टीकाकरण केंद्र तक आते-जाते कोरोना संक्रमण की चपेट में आ गए थे। फिर भी यदि 26,200 मामलों को वैक्सीन के दुष्प्रभावों से सीधे जोड़ा जाए तो भी यह प्रतिशत सिर्फ 0.01 आता है। इनमें भी मौत का आंकड़ा वैक्सीन लगवाने वाले हर 10 लाख लोगों में सिर्फ दो निकला। ऐसे में साइड इफेक्ट का खतरा नगण्य ही नजर आता है। अलबत्ता इससे कई हजार गुना खतरा तब पैदा होता, जब लोग सारे तथ्यों को जानते हुए भी कोरोना से बचाव करने वाली वैक्सीनों से परहेज बरतते।

बचाव का कारगर तरीका : ऐसे में सिर्फ कोविड ही नहीं, किसी भी अन्य गंभीर और संक्रामक बीमारी की रोकथाम का प्रभावी तरीका यही है कि उसके असर से बचाव का कोई टीका विकसित कर लिया जाए। महामारियों के मामले में तो यह और भी जरूरी है कि जितनी जल्दी हो सके, उतनी शीघ्रता से उसकी रोकथाम का टीका बनाया और लोगों को लगाया जाए। हालांकि वैक्सीनों का निर्माण और उपयोग कई सुधारों की मांग करता है। तात्पर्य यह है कि यदि कुछेक अपवादों को छोड़कर ये वैक्सीनें अपने उद्देश्य में सफल रहीं, तो हमें उन पर भरोसा करना होगा। अगर हम कोविड महामारी की संक्रामकता और उसकी संहारकता को ध्यान में रखेंगे, तो इसका अनुमान लगा पाएंगे कि इससे बचाने वाली वैक्सीनों ने मानवता की कितनी बड़ी सेवा की है।

बेहद लंबी है कारगर टीका निर्माण की यात्रा

एक दौर था जब दुनिया टीकों के बारे में नहीं जानती थी। चेचक, प्लेग, फ्लू और पोलियो जैसी बीमारियों ने इस कारण पूरी दुनिया पर कहर बरपा रखा था, लेकिन जब एक फ्रांसीसी जैवविज्ञानी लुई पाश्चर ने हैजा रोग के टीके का विकास किया तो दुनिया को बीमारियों की रोकथाम का एक रास्ता मिल गया। पाश्चर ने मुर्गियों को होने वाले हैजा के अलावा एंथ्रेक्स और रेबीज आदि के टीके भी विकसित किए थे। पाश्चर के दिखाए रास्ते पर ही विश्व में टीकाकरण अभियानों की शुरुआत हुई थी। लुई पाश्चर के बाद एक उल्लेखनीय काम एडवर्ड जेनर ने 1796 में किया था, जिन्होंने चेचक के टीके का विकास किया था। एडवर्ड जेनर ने ही असल में वैक्सीन या टीका शब्द दुनिया में प्रचलित किया। जहां तक पोलियो की वैक्सीन का सवाल है, तो यह काफी बाद में 20वीं सदी के सातवें दशक में सामने आई। अमेरिका की पीट्सबर्ग यूनिवर्सिटी में साइंटिस्ट जोनास साल्क ने 1952 में पहले प्रभावी पोलियो टीके के विकास का दावा किया था।

किसी संक्रमण का टीका बनाने की शुरुआत उस वायरस के जेनेटिक कोड का पता लगाने से होती है। जेनेटिक कोड बताता है कि इस बीमारी का उद्भव क्या है, किन हालात में यह संक्रमण बढ़ सकता है और जीवित रह सकता है और इसका खात्मा कैसे मुमकिन है? जहां तक कोविड रोधी वैक्सीनों की विकास यात्रा का सवाल है, तो दस जनवरी, 2020 को चीन ने कोरोना वायरस का जेनेटिक कोड दुनिया के साथ साझा कर दिया था, जिसके बाद से ही कोरोना की वैक्सीन के निर्माण की प्रक्रिया आरंभ हो गई थी। जेनेटिक कोड साझा करने का अभिप्राय यह है कि इसके तहत वायरस का जेनेटिक सिक्वेंस बताया गया था। इससे वायरस में आने वाले बदलावों और इसके उस व्यवहार एवं पैटर्न का अंदाजा लगता है, जो इसे एक प्रजाति से दूसरी प्रजाति और एक मनुष्य से दूसरे मनुष्य में फैलने की ताकत देता है। इससे यह जानकारी भी मिलती है कि यह वायरस तेजी से फैलेगा या धीमी गति से। कोई वैक्सीन बनाने के लिए जरूरी है कि उस वायरस के व्यवहार और बदलाव के सारे पैटर्न सावधानी से पढ़े जाएं, ताकि उससे मुकाबले के लिए बनने वाली वैक्सीन में कोई कमी न रह जाए। इसके बावजूद किसी महामारी की रोकथाम और बचाव के लिए उसका टीका या वैक्सीन बनाना आसान नहीं है। इस काम में दशकों का वक्त, भारी पूंजी और मेहनत लगती है।

-अभिषेक कुमार सिंह

खरी-खरी

पार्टी बदलने का मौसम

सुशील दीक्षित

चुनावी सीजन शुरू होते ही कुछ नेताओं के लिए अपने दल का पर्यावरण अचानक अशुद्ध हो जाता है। उन्हें लगने लगता है कि उन्हें गरीबों, असहायों की आवाज उठाने से रोका जा रहा है। चौकसपुर नगर के झपटलाल को चुनावों की घोषणा होते ही कुछ ऐसा ही आभास होने लगा। ऐसा ही उन्हें पांच साल पहले भी तब हुआ था जब वह किसी और दल में थे। चुनाव की घोषणा के थोड़ा पहले ही वह दम घुटने की शिकायत करने लगे थे। एक दिन वह बिस्तर पर बेहोश पाए गए। उनके परिजनों ने दूसरी पार्टी के अध्यक्ष को इस बारे में बताया। वह दौड़े-दौड़े झपटलाल के घर गए। उन्होंने अपनी पार्टी का सदस्यता फार्म आक्सीजन कैप की तरह उनकी नाक में पहनाया। तत्काल उनकी उखड़ी सांस व्यवस्थित चलने लगी। उनके हाथ हिले। पैरों में कंपन हुआ। फिर वह उठकर बैठ गए। शाम को उन्हें दूसरी पार्टी का टिकट मिल गया और वह नई पार्टी में आकर स्वास्थ्य लाभ करने लगे।

गत दिनों अचानक उनका वही पुराना मर्ज फिर उखड़ गया। उन्हें लगने लगा कि उनका दम घुटने लगा है। इस बार उनके लड़कों ने तत्काल ध्यान दिया। तीसरी पार्टी के अध्यक्ष को समय रहते ले आए। सदस्यता फार्म रूपी आक्सीजन दी गई और शाम को टिकट। अब झपटलाल स्वस्थ हैं। जब वह स्वस्थ होने की ओर बढ़ रहे थे उसी दौरान उनके ही एक और मंत्री मित्र धारा शेर को भी लगने लगा कि अब उनका इस पार्टी में दम घुटने लगा है। उन्होंने भी झपटलाल वाला इलाज कराया। अपने अंतर आत्मा की आवाज पर वह गरीबों, दबे कुचले लोगों की सेवा के लिए दूसरी पार्टी में शामिल हो गए। पत्रकारों ने पूछा कि 'पांच साल क्या आपका आत्मा सोता रहा था', तो उन्होंने बताया कि 'पिछले दल वाले उनके आत्मा को लोरी सुना कर सुलाते रहे।' इस पर पिछले दल के प्रवक्ता ने पलटवार किया कि इनके पास आत्मा है ही नहीं।

चुनाव की घोषणा के साथ ही कई नेताओं को लगने लगता है कि वे पार्टी में रह कर दलितों, पिछड़ों, गरीबों के लिए आवाज नहीं उठा पर रहे हैं। ऐसे नेता आवाज उठाने के लिए दूसरे दलों में जाने लगे हैं।

पोस्ट

हेमंत करकरे मामले पर शशि थरूर के बयान सुनकर यही महसूस हो रहा है कि क्या वह कांग्रेस में मणिशंकर अय्यर की कमी पूरी कर रहे हैं या फिर वह दिग्विजय सिंह का अंग्रेजी भाषी संस्करण हैं।
सुशांत झा@jhasushant

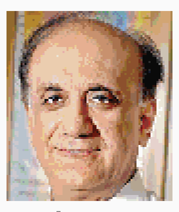

लगता है कि पश्चिमी देशों की सरकारें इस लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व वाली कमजोर गठबंधन सरकारें चाहती हैं, जो रूस-यूक्रेन, जलवायु परिवर्तन से लेकर व्यापार के मोर्चे पर उनके समक्ष झुक जाए। अगर मोदी को पांच साल और मिल जाते हैं तो 2029 तक भारतीय अर्थव्यवस्था सात ट्रिलियन डालर के स्तर तक पहुंच सकती है, जो उनके लिए पचाना मुश्किल हो जाएगा।
मिन्हाज मर्चेंट@MinhazMerchant

मुझे वह दौर भी याद है जब दिन का खेल समाप्त होने के बाद पत्रकार भारतीय कप्तान पटौदी और टीम के अन्य साथियों के साथ खाते-पीते थे, लेकिन एक बार भी किसी खिलाड़ी ने पत्रकार द्वारा उनकी आलोचना को लेकर सवाल नहीं उठाया। तब बहुत विचारोत्तेजक बातचीत हुआ करती थी, अब हालात नाटकीय रूप से बदल गए हैं। मकरंद वेंगणकर@wmakarand

विकास धूलिया
स्टेट ब्यूरो चीफ, उत्तराखंड

उत्तराखंड डायरी

कैसे बुझेगी जंगल की आग

विषम भौगोलिक परिस्थितियों वाले राज्य उत्तराखंड का सामना आपदाओं से अक्सर होता ही रहता है। ऐसा ही कुछ प्रति वर्ष गर्मियों की शुरुआत के साथ होता है, जब एक आपदा मुंह बाए आ खड़ी होती है। यह है जंगलों की आग, जिसमें कीमती वन संपदा तो स्वाहा होती ही है, वन्य जंतु भी बड़ी संख्या में इसकी चपेट में आते हैं। इस दिनों राज्य के अलग-अलग हिस्सों में जंगलों में आग की घटनाओं ने विकराल रूप ले लिया है। उत्तराखंड एक ऐसा राज्य है, जिसका 71.05 प्रतिशत भूभाग वन क्षेत्र है। देश के पर्यावरण के संरक्षण में इस दृष्टिकोण से उत्तराखंड की महत्वपूर्ण भूमिका है। राज्य से प्रति वर्ष मिलने वाली तीन लाख करोड़ रुपये से अधिक मूल्य की पर्यावरणीय सेवाओं में अकेले वनों का योगदान एक लाख करोड़ रुपये से अधिक आंका गया है। ऐसे में प्रति वर्ष जंगलों में लगने वाली आग से पैदा आपदा की स्थिति सभी को चिंतित करती है। अमूमन माना जाता है कि 15 फरवरी से मानसून आने तक तापमान बढ़ने से जंगल धधकते हैं। इस अवधि को ही फायर सीजन कहा जाता है, लेकिन पिछले कुछ वर्षों से देखने में आ रहा है कि जंगल कभी भी सुलग जा रहे हैं। वर्ष 2020 में फायर सीजन शुरू होने से चार महीने पहले अक्टूबर में ही जंगलों में आग का सिलसिला शुरू हो गया था, जो मानसून आने तक चलता रहा। इसीलिए सरकार ने फायर सीजन की अवधि को कुछ महीनों के बजाय वर्ष भर कर दिया।

अगर वर्ष 2010 से अब तक की अवधि में जंगलों की आग की घटनाओं को देखें तो इस दौरान आग की 16 हजार से अधिक घटनाएं हुई हैं। इस वर्ष ही नवंबर से अब तक राज्य में जंगलों में 930 स्थानों पर आग की घटनाएं सामने आ चुकी हैं, जिससे 1197 हेक्टेयर वन क्षेत्र प्रभावित हुआ है। औसतन प्रति वर्ष लगभग दो हजार हेक्टेयर वन क्षेत्र आग से प्रभावित होता है। वन विभाग यद्यपि जंगलों को आग से बचाने के लिए व्यापक तैयारी करता है, लेकिन ऐसे कई कारण हैं, जो प्रति वर्ष इस तरह की घटनाओं की पुनरावृत्ति के लिए जिम्मेदार कहे जा सकते हैं। इनमें से एक है चीड़ के जंगल, जो राज्य के लगभग 16 प्रतिशत हिस्से में फैले हैं। चीड़ के वनों से प्रति वर्ष लगभग 23.66 लाख मीट्रिक टन चीड़ की पत्तियां, जिसे पिरुल कहा जाता है, एकत्र होती हैं। ये अत्यंत ज्वलनशील होती हैं।

रुद्रप्रयाग के जंगलों में लगी आग। जागरण

जंगलों में आग फैलने से रोकने में फायर लाइन की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। फायर लाइन दरअसल जंगल के बीच चौड़े रास्ते होते हैं, जिनका हर वक्त साफ रहना जरूरी होता है। जंगल की आग एक हिस्से से दूसरे हिस्से तक न फैले, इसके लिए फायर लाइन को वहां उगी झाड़ियों और जमा पत्तियों के ढेर को नियंत्रित ढंग से जलाकर साफ रखा जाता है। राज्य के जंगलों में फायर लाइन की कुल लंबाई 13917 किमी से अधिक है, लेकिन विषम भौगोलिक परिस्थितियों, मौसम आदि के कारण इन्हें पूरी तरह साफ रखने में दिक्कत आती है, जो बाद में आग के फैलाव का कारण भी बनती है।

आग पर नियंत्रण के लिए अब सरकार क्लाउड सीडिंग यानी कृत्रिम वर्षा के विकल्प पर विचार कर रही है। साथ ही सेना की मदद से हेलीकाप्टर के जरिये आग से प्रभावित वन क्षेत्र में पानी बरसाया जा रहा है, ताकि आग पर नियंत्रण पाया जा सके। जंगलों में आग की घटनाओं के पीछे कई बार शरारती तत्वों का हाथ होता है, लिहाजा सरकार इस दिशा में भी सख्त कदम उठाने जा रही है। इस कड़ी में सरकार ने तय किया किया है कि जो व्यक्ति जंगलों में आग लगाते पकड़े जाएंगे उनके खिलाफ गैंगस्टर एक्ट के अंतर्गत कार्रवाई की जाएगी और उनकी संपत्ति भी जब्त की जाएगी। आग से रोकथाम के लिए जिलाधिकारियों को बजट सौंपा गया है। साथ ही युवा मंगल दल, महिला मंगल दल, स्वयं सहायता समूहों, स्वयंसेवी, पीएसी जवान, होमगार्ड एवं पीआरडी जवानों को भी इस कार्य में लगाने की तैयारी है। आपदा प्रबंधन विभाग पानी के छोटे टैंकर और आग बुझाने के उपकरण खरीद रहा है। कार्य में जोखिम को देखते हुए 4000 फायर वाचर का बीमा कराया जा रहा है। वन विभाग ने भी हर जिले में नोडल अधिकारी तैनात कर दिए हैं। इसकी प्रतिदिन रिपोर्ट शासन को भेजी जा रही है। इसके साथ ही पौड़ी और अल्मोड़ा में एनडीआरएफ की तैनाती भी की जा रही है।

सरकार ने जन जागरूकता के दृष्टिगत अब निर्णय लिया है कि जिन गांवों के आपास के जंगलों में आग की घटनाएं नहीं होंगी, उन्हें पुरस्कृत किया जाएगा। इसी क्रम में वन विभाग ने अब घोषणा की है कि जंगलों को आग से बचाने में जो वनाग्नि प्रबंधन समितियां बेहतर कार्य करेंगी, उन्हें राज्य स्तर पर पुरस्कृत किया जाएगा। फिलहाल तमाम प्रयासों के बाद भी जंगलों की आग पूरी तरह नियंत्रित होती नहीं दिख रही है। इस स्थिति में सबकी नजरें आसमान की ओर टिकी हैं कि कब इंद्रदेव मेहरबान हों और वर्षा होने से जलते जंगलों को राहत मिले।

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या कनाडा सरकार जानबूझकर खालिस्तानी अतिवादियों को संरक्षण दे रही है?

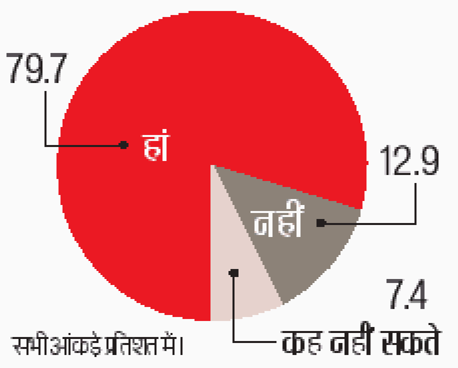

सभी आंकड़े प्रतिशत में।

आज का सवाल

क्या दुष्कर्म के झूठे आरोप लगाने वाली महिलाओं को सजा सुनाने से ऐसे मामलों में कमी आएगी?

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।

जनपथ

बोरे-बोरे मिल रहे नोटों के भंडार,
फिर भी ईडी पर खफा दिखता मेरा यार।
दिखता मेरा यार कहां से आया पैसा,
किस धंधे से बंधु कमाया ऐसा-वैसा?
हैं प्रसन्न हम लोग पाय आश्वासन को रे,
नेता रखते नोट जमा कर बोरे-बोरे!
- ओमप्रकाश तिवारी

हरियाणा डायरी

लोस चुनाव के बीच पाला बदल का खेल

अनुराग अग्रवाल
राज्य ब्यूरो प्रमुख, हरियाणा

हरियाणा में लोकसभा चुनाव के बीच अचानक बदले राजनीतिक घटनाक्रम में प्रदेश की भाजपा सरकार को झटका लगा है। विधायकों के संख्या बल के हिसाब से हालांकि सरकार को हाल-फिलहाल कोई खतरा नहीं है, लेकिन साढ़े चार साल से सत्ता सुख भोग रहे तीन निर्दलीय विधायक जिस तरह से भाजपा का साथ छोड़कर कांग्रेस की गोद में जा बैठे हैं, वह भाजपा के लिए बेहद चौंकाने वाला घटनाक्रम है। अब भाजपा को दो मोर्चों पर जूझना पड़ेगा। पहला, राज्य की सभी 10 लोकसभा सीटों पर कमल के फूल खिलाने का प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने जो टास्क दिया है, उसे हर हाल में पूरा करना। दूसरा, यह कि पूर्व मुख्यमंत्री मनोहर लाल ने जिस विश्वास के साथ नायब सिंह सैनी को मुख्यमंत्री बनाया है, उसे भाजपा के शीर्ष नेतृत्व की नजर में बनाए रखना। भाजपा की आधी ऊर्जा अब राज्य की नायब सरकार को बचाए रखने में खर्च होने वाली है, ताकि इसी साल अक्टूबर में होने वाले विधानसभा चुनाव में पार्टी को किसी तरह का नुकसान न उठाना पड़े।

हरियाणा की 90 सदस्यीय विधानसभा में करनाल के विधायक मनोहर लाल और रानियां के निर्दलीय विधायक रणजीत चौटाला के इस्तीफा देने के बाद विधायकों की संख्या 88 रह गई है। मनोहर लाल और रणजीत चौटाला दोनों लोकसभा चुनाव लड़ रहे हैं। मनोहर लाल ने मुख्यमंत्री पद छोड़ने के बाद नायब सिंह सैनी के लिए करनाल विधानसभा सीट खाली की थी, जबकि निर्दलीय विधायकों के कोटे से प्रदेश सरकार में बिजली व जेल मंत्री बने रणजीत चौटाला को सीधे केंद्रीय गृह मंत्री अमित शाह के आशीर्वाद की बदौलत लोकसभा चुनाव का टिकट मिला है। संख्या बल के हिसाब से भाजपा को विधानसभा में 45 विधायकों की जरूरत है। उसके पास स्वयं के 40 विधायक हैं। छह निर्दलीय विधायकों में से दो अभी उसके साथ हैं, जबकि एक विधायक बलराज कुंडू शुरू से अकेले चल रहे हैं। तीन निर्दलीय विधायकों ने सोमवार को भाजपा का साथ छोड़कर पूर्व मुख्यमंत्री भूपेंद्र सिंह हुड्डा का हाथ थाम लिया। साढ़े चार साल तक भाजपा के साथ सत्ता में रही जेजेपी के चार विधायक भी भाजपा के साथ खड़े हैं। इससे भाजपा सरकार के गिरने का खतरा नहीं है, लेकिन जिस तरह से हुड्डा ने निर्दलीय विधायकों संग भाजपा के साथ लोकसभा चुनाव के दौरान खेल खेला है, उसने भाजपा के रणनीतिकारों को चिंता जरूर बढ़ा दी है।

हरियाणा के रोहतक में मंगलवार को कांग्रेस के वरिष्ठ नेता भूपेंद्र सिंह हुड्डा के साथ निर्दलीय विधायक सोमवीर सांगवान, रणधीर गोलन तथा धर्मपाल गोंदर। जागरण

मुख्यमंत्री नायब सिंह सैनी और उनकी टीम के अधिकतर नेता दावा कर रहे हैं कि सरकार को कोई खतरा नहीं है। वे यह इशारा कर रहे हैं कि जिन विधायकों की इच्छाएं पूरी नहीं हुईं, वे हुड्डा की कठपुतली बन रहे हैं। इन विधायकों को लगता होगा कि कांग्रेस उनकी इच्छाएं पूरी कर सकती है। नायब सिंह सैनी ने विधायकों की इच्छा शब्द का इस्तेमाल कर स्पष्ट संकेत दे दिया है कि ये निर्दलीय विधायक सरकार से क्या चाहते थे। इन निर्दलीय विधायकों ने बार-बार सरकार पर दबाव बनाया कि रणजीत चौटाला को हटाकर उनमें से किन्हीं दो या तीन विधायकों को मंत्री बनाया जाए, लेकिन मनोहर लाल और नायब सिंह सैनी कभी उनके दबाव में नहीं आए। बादशाहपुर के विधायक राकेश दौलताबाद बाकी निर्दलीय विधायकों के ज्यादा चक्कर में नहीं पड़े। जब भी निर्दलीय विधायकों ने बैठकें बुलाकर सरकार पर दबाव बनाने की कोशिश की, दौलताबाद कभी उनमें शामिल नहीं हुए। पृथला के निर्दलीय विधायक नयनपाल रावत ने बाकी निर्दलीय विधायकों के कंधे पर बंदूक रखकर हमेशा सरकार पर दबाव बनाया। हर बार जब भी मंत्रिमंडल विस्तार और उसमें बदलाव की अटकलें चलीं, तभी नयनपाल रावत, रणधीर गोलन, धर्मपाल गोंदर और सोमबीर सांगवान ने दबाव की राजनीति का सहारा लिया। हुड्डा निर्दलीय विधायकों के इस पाला बदल के घटनाक्रम से काफी उत्साहित हैं, लेकिन भाजपा इसे सामान्य प्रक्रिया के रूप में ले रही है। सरकार ने अलग-अलग समय पर रणधीर गोलन को पर्यटन विकास निगम, सोमबीर सांगवान को पशुधन विकास बोर्ड तथा धर्मपाल गोंदर को वन विकास निगम का चेयरमैन नियुक्त किया है।

केंद्र द्वारा कृषि कानून लागू किए जाने के विरोध में सोमबीर सांगवान ने चेयरमैन पद से इस्तीफा देकर सरकार से समर्थन वापस ले लिया था। इसके बाद जब केंद्र ने कृषि कानूनों को वापस लिया तो सांगवान ने दोबारा भाजपा सरकार को समर्थन दे दिया। प्रदेश की भाजपा सरकार ने इन सभी निर्दलीय विधायकों के कभी कोई काम नहीं रोके। लेकिन मंत्री पद की चाह ने इन विधायकों की महत्वाकांक्षाओं को इतना बढ़ा दिया कि अब वे पाला बदल के खेल में भाजपा का साथ छोड़कर हुड्डा के पाले में खड़े नजर आए हैं।

****

गौरव लक्ष्य पाने के लिए कोशिश करने में है, न कि लक्ष्य तक पहुंचने में। -महात्मा गांधी

एक मंत्री के निजी सचिव के नौकर के घर से नकदी की इतनी बड़ी बरामदगी राजनीतिक संरक्षण के बगैर संभव नहीं दिखती, लिहाजा संसदीय लोकतंत्र में शुचिता की बहाली के लिए राजनीति में थैलीशाहों का प्रवेश रोकने की दिशा में सामूहिक मंथन बेहद जरूरी है।

काले धन के बेनामी गोदाम

झारखंड में ग्रामीण विकास मंत्री आलमगीर आलम के निजी सचिव संजीव कुमार लाल के नौकर के घर से 35 करोड़ रुपये से ज्यादा की नकदी की बरामदगी चौंकाने वाली तो है ही, उतना ही हैरान करने वाला ईडी का आरोप है कि ऊपर से नीचे तक विभाग के तकरीबन सभी अधिकारी मनी लॉन्ड्रिंग में शामिल रहे थे। ये दरअसल काले धन के बेनामी गोदाम हैं, जिनमें पता ही नहीं चलता कि पैसा किसका है। उल्लेखनीय है कि इस मामले के तार राज्य के जल संसाधन विभाग के मुख्य अभियंता वीरेंद्र राम, जो तब ग्रामीण विकास मंत्रालय में डेपुटेशन पर कार्यरत थे, की पिछले वर्ष हुई गिरफ्तारी से जुड़े हैं, जिन्हें हिरासत में लेते वक्त खुद ईडी ने नहीं सोचा होगा कि इससे इतने बड़े खुलासे होंगे। जांच में जब यह पता चला कि वीरेंद्र राम कई नेताओं व नौकरशाहों का पैसा निवेश करते थे, तब ईडी की सुई नेताओं की ओर घूमी। पूछताछ के दौरान, उन्होंने राज्य में भ्रष्टाचार के एक जटिल नेटवर्क का खुलासा किया, जिसमें न केवल वह खुद, बल्कि नेताओं व अधिकारियों का एक पूरा तंत्र शामिल था। उन्होंने एक कार्यप्रणाली का भी खुलासा किया, जिसमें खासकर टेंडर प्रक्रिया के दौरान रिश्वत का पैसा विभिन्न चैनलों के माध्यम से भेजा जाता था। अब ग्रामीण विकास मंत्री बेशक शक की सुई अपने सचिव की ओर घूमा रहे हैं, लेकिन उन्हीं के विभाग के मुख्य अभियंता की गिरफ्तारी से हुए खुलासे पूरी मशीनरी के भ्रष्टाचार में लिप्त होने के अंदेशे को गहराते हैं। उल्लेखनीय है कि पिछले साल दिसंबर में भी कांग्रेसी सांसद धीरज साहू से जुड़े तीन राज्यों के कई ठिकानों पर आयकर विभाग के छापे से तीन सौ करोड़ रुपये से ज्यादा की नकदी प्राप्त हुई थी। लोकसभा चुनावों के महत्वपूर्ण मोड़ पर इससे कांग्रेस के नेता का नाम जुड़ना खुद कांग्रेस के लिए असहज करने वाला तो है ही, खासकर तब, जब राहुल गांधी खुद सात मई को चुनावी रैली के लिए झारखंड दौरे पर पहुंचे थे। हालांकि बगैर सुबूत के यह नहीं कह सकते कि इस काले धन का किसी खास राजनीतिक दल से कोई संबंध है। लेकिन यह तो साफ है कि नोटबंदी या डिजिटल लेन-देन के बढ़ते प्रसार के बावजूद काले धन के कारोबारियों पर जरा भी असर नहीं पड़ा है। एक नौकर कितना ही भ्रष्ट हो, उसके घर से इतनी बड़ी रकम की बरामदगी हो, तो इस किस्म का भ्रष्टाचार राजनीतिक संरक्षण को ही इंगित करता है, जो शर्मनाक है, और इस बारे में राजनीति दलों को ही कोई फैसला लेना होगा। क्योंकि संसदीय लोकतंत्र में शुचिता की बहाली के लिए राजनीति में थैलीशाहों का प्रवेश रोकने की दिशा में सामूहिक मंथन बेहद जरूरी है।

चीन की शह पर नेपाली दुस्साहस

नेपाल में प्रचंड के नेतृत्व वाली गठबंधन सरकार द्वारा, जिसमें चीन समर्थक एवं भारत विरोधी पूर्व नेपाली प्रधानमंत्री केपीएस ओली प्रमुख भागीदार हैं, हाल ही में सौ रुपये की नेपाली मुद्रा पर विवादित नक्शा छापने से यही संकेत मिलता है कि मालदीव के बाद अब नेपाल भी चीन का अनुसरण कर रहा है।

के एस तोमर
राजनीतिक विश्लेषक

दो दिसंबर, 1815 को ईस्ट इंडिया कंपनी और नेपाल के बीच सुगौली संधि पर हस्ताक्षर किया गया था और बाद में चार मार्च, 1816 को इसकी पुष्टि की गई थी, जिसने हिमालय साम्राज्य और औपनिवेशिक भारत के बीच सीमा रेखा स्थापित की। सुगौली संधि के अनुसार, काली नदी को दोनों देशों के बीच सीमा के रूप में स्वीकार किया गया था, लेकिन नेपाल लिपुलेख, लिम्पियाधुरा और कालापनी पर अपना स्वामित्व जताता रहा, जिसका जमीनी हकीकत से कोई वास्ता नहीं है।

वर्ष 1816 से 2024 के बीच कई तरह के नक्शे प्रकाशित किए, जिसने सीमा के मुद्दे को और जटिल बना दिया। दोनों देशों की सरकारों द्वारा गठित सीमा आयोगों के नतीजों से वांछित परिणाम नहीं मिले हैं। अब नेपाल की कम्युनिस्ट सरकार ने अपनी मुद्रा पर नेपाल का एक नया नक्शा प्रकाशित किया है, जिसमें लिपुलेख, लिम्पियाधुरा और कालापानी जैसे भारतीय क्षेत्र को नेपाल के हिस्से के रूप में दर्शाया गया है, जिससे सदियों पुराने रिश्ते खतरे में पड़ गए हैं, क्योंकि इस तरह के गैर-राजनयिक कदम से भविष्य में खुला टकराव हो सकता है।

इसे विडंबना ही कहा जाएगा, क्योंकि प्रधानमंत्री मोदी ने नेपाल के साथ संबंधों को मजबूत करने का काफी प्रयास किया है और आधे दर्जन से अधिक बार नेपाल का दौरा किया, जिसमें 2022 में लुंबिनी की यात्रा भी शामिल है, जब उन्होंने भिक्षुओं, बौद्ध विद्वानों और गणमान्य लोगों की सभा को संबोधित किया। मोदी ने कहा कि बुद्ध की प्रासंगिकता किसी भौगोलिक सीमा में सीमित नहीं है, बल्कि वह सबके हैं। उन्होंने भारत-नेपाल रिश्तों की तुलना पहाड़ों की ऊंचाई से करते हुए इसे प्रौद्योगिकी, विज्ञान और बुनियादी ढांचों के विकास तक विस्तार देने की प्राथमिकता जताई। लेकिन लगता है कि नेपाल की कम्युनिस्ट सरकार इस रिश्ते को नष्ट करने पर तुली हुई है, जो कि हिमालयी साम्राज्य के लोगों के हितों के खिलाफ होगा। अब नई दिल्ली में आने वाली नई सरकार के लिए चीन समर्थक नेपाल से निपटने के लिए फिर से एक नई रणनीति तैयार करने की अग्निपरीक्षा होगी। संभवतः नेपाल के साथ संबंध बनाए रखने के लिए भारत लचीला रुख अपना सकता है।

कूटनीतिक विशेषज्ञ इस बात पर एकमत हैं कि नेपाल सरकार को चीन भारत पर दबाव बनाने के लिए उकसाता है, जिससे रिश्ते तनावपूर्ण हो सकते हैं और नेपाल में चीन को बढ़त मिल सकती है। प्रचंड के नेतृत्व वाली गठबंधन सरकार, जिसमें चीन समर्थक एवं भारत विरोधी पूर्व नेपाली प्रधानमंत्री केपीएस ओली प्रमुख भागीदार हैं, ने हाल ही में सौ रुपये की नेपाली मुद्रा छापने का आक्रामक फैसला किया, जिसमें नेपाली नक्शे में भारतीय क्षेत्रों को दर्शाया गया है। इस पर प्रतिक्रिया जताते हुए भारत के विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने स्पष्ट कर दिया कि नेपाल के इस कदम से जमीनी स्तर पर वास्तविकता नहीं बदलेगी। उन्होंने कहा कि 'हम स्थापित मंच के माध्यम से सीमा मुद्दों पर नेपाल से बातचीत कर रहे हैं। इस बीच नेपाल ने एकतरफा तौर पर अपनी तरफ से कुछ कदम उठाए हैं।' भारत पहले ही नेपाल की ऐसी कोशिशों को नकार चुका है।

इसके विपरीत, नेपाल का दावा है कि 1962 के भारत-चीन युद्ध के बाद भारत ने तीन क्षेत्रों पर अवैध रूप से कब्जा कर लिया, जो विवाद का विषय रहा है, क्योंकि यह वास्तविकता से बहुत दूर है और सुगौली संधि की भावना के खिलाफ है। नेपाल की मुद्रा पर नया नक्शा छापने के नेपाल सरकार के फैसले ने नई दिल्ली में कई लोगों को आश्चर्यचकित कर दिया। इससे पहले भी तत्कालीन नेपाली प्रधानमंत्री ओली ने नया नक्शा तैयार कराया था, जिसमें भारत के इन क्षेत्रों को नेपाल में दिखाया गया था। इससे भारत नाराज हो गया था और इस शरारती कदम को सिरे से खारिज कर दिया था।

ओली ने आठ मई, 2020 को रक्षामंत्री राजनाथ सिंह द्वारा उत्तराखंड के धारचूला से लिपुलेख दर्रे को जोड़ने वाली 80 किलोमीटर लंबी रणनीतिक रूप से महत्वपूर्ण सड़क के उद्घाटन पर भी आपत्ति जताई थी। नेपाल ने भारत के नव उद्घाटित लिंक रोड पर भी असहमति जताई थी, जो लिपुलेख दर्रे से कैलाश मानसरोवर को जोड़ती है।

विशेषज्ञों का कहना है कि नई सरकार मुख्य रूप से प्रचंड के सीपीएन (माओवादी सेंटर) और सीपीएन-यूएमएल, नेपाल की कम्युनिस्ट पार्टी (एकीकृत मार्क्सवादी-लेनिनवादी) के नेतृत्व वाले 'चीन समर्थक' वफादार गुटों का संयोजन है, जिसका नेतृत्व पूर्व प्रधानमंत्री केपीएस ओली करते हैं, एक घातक जोड़ी बनाता है। यह कटु सच्चाई है कि ओली नेपाल की गठबंधन सरकार पर हावी हो रहे हैं, क्योंकि प्रचंड (32 सांसद) की तुलना में उनके पास 77 सांसदों का बहुमत है। प्रचंड और ओली कट्टर कम्युनिस्ट हैं, जो शायद भारत और चीन के साथ संतुलन बनाने में सहज महसूस नहीं कर रहे होंगे।

यह एक स्थापित तथ्य है कि नेपाल नमक से लेकर पेट्रोलियम उत्पादों तक आवश्यक वस्तुओं के लिए भारत पर पूरी तरह से निर्भर है। अगर नेपाल का झुकाव चीन की तरफ होता भी है, तो भौगोलिक रूप से उन वस्तुओं को चीन से आयात करना उसके लिए संभव नहीं है। भारत ने 53.9 करोड़ डॉलर का निर्यात किया और फिर नेपाल से 6.21 करोड़ डॉलर का आयात किया, जिससे व्यापार संतुलन में 47.7 करोड़ डॉलर की बढ़त दर्ज की गई। हालांकि व्यापार एवं उद्योग के आंकड़े बताते हैं कि नेपाल से आयात एवं निर्यात, दोनों में जनवरी, 2023 और जनवरी, 2024 के बीच कमी दर्ज की गई है।

चीन ने हाल ही में मालदीव को अपने पक्ष में कर लिया है और अब नेपाल भी उसी का अनुसरण कर रहा है। यह भारतीय कूटनीति के लिए गंभीर चुनौती है, इसलिए भारत को मालदीव और नेपाल के साथ संयम और लचीलेपन से निपटना चाहिए और इस क्षेत्र में चीन के विस्तारवाद पर अंकुश लगाने के लिए बातचीत को प्राथमिकता देनी चाहिए।

विशेषज्ञों का मानना है कि नेपाल के कम्युनिस्ट भारत विरोधी प्रचार को ग्रामीण स्तर तक फैलाने में सफल हो गए हैं, जो कूटनीतिक रूप से आत्मघाती साबित हो सकता है, क्योंकि यह नेपाल के लोगों के हितों के खिलाफ होगा।

edit@amarujala.com

जीवन धारा

योगानंद परमहंस

मन की स्थिरता, केंद्रीकरण और समग्रता को ही एकाग्रता, तन्मयता और तल्लीनता कहा जाता है। यह सारा खेल हमारे मन का है। शरीर तो मात्र साधन भर है। असली कलाकार तो हमारा मन ही है।

मन की शक्ति में छिपा है सफलता का राज

जीवन में हमें ऐसे बहुत से उदाहरण मिलेंगे, जब हमें लगा होगा कि एक बार जो काम हमने किया, वह बहुत ही अच्छा और लाभदायी रहा, और जब दूसरी बार वही काम किया, तो परिणाम निराशाजनक रहा। आखिर ऐसा क्यों होता है कि एक ही काम, एक ही करने वाला और एक जैसी ही कार्य प्रकृति व समय, लेकिन नतीजे फिर भी अलग-अलग! इसी तरह एक ही काम में लगे दो समान लोगों के साथ भी होता है। एक ही कक्षा में कई विद्यार्थी होते हैं, लेकिन सबका नतीजा समान तो नहीं होता। इस अंतर का एकमात्र कारण एकाग्रता, तल्लीनता, तन्मयता में छिपा है। जो जिस समय अपने काम में थोड़ा एकाग्र, तल्लीन और तन्मय होगा, उसका काम उस समय में उतना ही सुचारु और अच्छी गुणवत्ता वाला होगा। जो अधिक एकाग्रता से ध्यान केंद्रित करेगा, उसके विचार उतने ही स्पष्ट और उत्कृष्ट होंगे। हम जितनी तन्मयता, तल्लीनता से काम में जुटेंगे, एकाग्रता उतनी ही सूक्ष्म होगी।

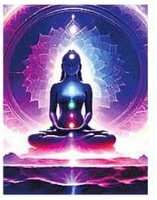

मन की स्थिरता, केंद्रीकरण और समग्रता को ही एकाग्रता, तन्मयता और तल्लीनता कहा जाता है। यह सारा खेल हमारे मन का है। शरीर तो मात्र साधन भर है। असली कलाकार तो हमारा मन ही है, जिसकी शक्ति हमें एकाग्रता की ओर ले जाती है और कार्य विशेष में तल्लीन कर देती है। दुनिया की तमाम महान विभूतियों के जीवन पर नजर डालें, तो पाएंगे कि उनकी सफलता का रहस्य मन की शक्ति में छिपा था। वास्तविक कर्ता तो मन है, जो हमें सफलता की ओर ले जाता है। जब हम मन की शक्ति से एकाग्रता, तन्मयता को हासिल कर लेते हैं, तो फिर कोई भी कार्य असंभव नहीं रह जाता। इसीलिए कहा जाता है कि मनुष्य के मन के भीतर ही लौकिक, पारलौकिक सारी शक्तियां सुरक्षित रहती हैं। मन की स्थिरता का अर्थ होता है- उसमें सभी प्रकार की शक्तियों की उपस्थिति और शक्तियों की उपस्थिति का मतलब होता है सफलता। जबकि मन का परिभ्रमण बताता है कि हमारे भीतर शक्तियों का अभाव है और इसी वजह से हम सफलता को छू नहीं पाते। जीवन में निश्चित सफलता पाने के लिए मन में एकाग्रता का उत्पन्न होना बेहद जरूरी है। मन हमेशा चंचल प्रकृति का होता है। इसलिए पहले उसे साधना होगा और उसे स्थिर व शक्तिशाली बनाना होगा। मन को शक्तिशाली बनाने के लिए जरूरी है कि उसे मुक्त और निर्भय रखा जाए। मन की दो ही गतियां होती हैं। या तो यह मनुष्य को अपना दास बना लेता है या फिर स्वयं मनुष्य का दास बन जाता है। अगर मन कमजोर पड़ने लगा और हम उसके दास होते चले गए, तो क्या होगा? हम इच्छाओं, लिप्साओं, तृष्णा के जाल में फंसने लगेंगे और अंततः हमारी भीतरी शक्तियों का ह्रास होने लगेगा। अगर मन निरंकुश होता चला गया, तो भी वह मनुष्य को अपना दास बना लेगा। और अगर हमने मन को काबू करना सीख लिया तो हम फिर उसके गुलाम नहीं रहने वाले। इसलिए कहते हैं मन पर विजय पाना बहुत जरूरी है।

मन को साधें...

सूत्र

मन हमेशा चंचल प्रकृति का होता है। इसलिए पहले उसे साधना होगा और इसके लिए उसे स्थिर व शक्तिशाली बनाना होगा। मन को शक्तिशाली बनाने के लिए जरूरी है कि उसे मुक्त और निर्भय रखा जाए। अगर हमने मन को काबू करना सीख लिया, तो हम उसके गुलाम नहीं रहने वाले। इसलिए मन पर विजय पाना बहुत जरूरी है।

दूसरा पहलू

ये सस्ते कैंटीन युवाओं को राहत दे रहे हैं, पर इन कैंटीनों में युवाओं की बढ़ती भीड़ चीन की आर्थिक अनिश्चितता के बारे में भी बताती है।

बुजुर्गों की सुविधा में सेंध लगाते चीनी युवा

एलेक्जेंड्रा स्टीवेंसन

माओ के समय अकाल पीड़ितों को राहत देने के लिए ये सामुदायिक कैंटीन खुले थे। पर पिछले कुछ दशकों में इन्हें सिर्फ वृद्धों पर केंद्रित कर दिया गया।

शंघाई में बुजुर्गों के एक कैंटीन में 29 साल की महिला मैगी जू भोजन खत्म कर ही रही थी कि एक कर्मचारी उसकी तरफ करछुल लहराती हुई आई, लेकिन जू ने उसकी अनदेखी की। अगर आप बारह बजे आएंगे, तो आंटी आपको कम खाना देंगी। डेढ़ बजे के बाद आने पर कैंटीन की आंटी सूप नहीं देतीं। यही नहीं, वह जल्दी-जल्दी भोजन खत्म करने के लिए दबाव भी बनाती हैं। इसके बावजूद बढ़ती बेरोजगारी और अनिश्चित भविष्य को देखते हुए पैसे बचाने के लिए चीनी युवाओं में बुजुर्गों के सस्ते कैंटीन में भोजन करने की प्रवृत्ति बढ़ी है, जहां एक या दो डॉलर में भरपेट खाना मिल जाता है।

ये कैंटीन हालांकि निजी हैं, पर सत्तारूढ़ चीनी कम्युनिस्ट पार्टी इन्हें सब्सिडी देती है। मूलतः ये कैंटीन उन बुजुर्गों के लिए हैं, जो खुद भोजन नहीं बना सकते। बुजुर्गों को उनके घरों में भी भोजन भेजे जाने की व्यवस्था है। 1950 के दशक में माओ के समय इन कम्युनिटी कैंटीनों ने निजी कैंटीनों की जगह ली थी। तब ये कैंटीन अकाल से पीड़ित चीनियों को राहत देने के लिए शुरू किए गए थे, पर पिछले कुछ दशकों में इन्हें सिर्फ वृद्धों पर केंद्रित कर दिया। अब युवा बड़ी संख्या में इन कैंटीनों में खाने आते हैं।

पूरे चीन में ऐसे 6,000 कैंटीन हैं। इन कैंटीनों में सस्ता खाना मिलता है, और कई बार खाना इतना ज्यादा होता है कि लोग बचा हुआ खाना अपने साथ ले जाते हैं।

पूरे चीन में ऐसे 6,000 कैंटीन हैं, जबकि अकेले शंघाई में, जहां की आबादी का पांचवां हिस्सा 65 साल या उससे अधिक उम्र का है, ऐसे 305 कैंटीन हैं। सिर्फ यही नहीं कि इन कैंटीनों में सस्ता खाना मिलता है, बल्कि खाना कई बार इतना ज्यादा होता है कि लोग बचा हुआ खाना अपने साथ ले जाते हैं। यह भी इन कैंटीनों में आने का एक आकर्षण है। असल में चीनी युवा अपने भविष्य के प्रति इतने आशंकित हैं कि वे खाने का एक टुकड़ा भी बर्बाद नहीं करना चाहते।

हालांकि कई बार इन सस्ते कैंटीनों में इतनी भीड़ होती है कि बाहर की गलियों तक ग्राहकों की लाइन लग जाती है। बूढ़े लोग तो दशकों से इन कैंटीनों का लाभ उठा ही रहे हैं, अब चीनी युवा भी अपने पैसे बचाने के लिए लंबा सफर तय कर या लंबी कतारों में खड़े होकर इन सस्ते कैंटीनों में आते हैं। कई बार इन युवाओं को बुजुर्ग बताते रहते हैं कि इन कैंटीनों में कौन-सी डिश सस्ती है। बेशक ये सस्ते कैंटीन युवाओं को राहत दे रहे हैं, लेकिन इन कैंटीनों में युवाओं की बढ़ती भीड़ चीन की आर्थिक अनिश्चितता के बारे में भी बताती है।

©The New York Times 2024

आंकड़े

सड़क निर्माण की गति

राष्ट्रीय राजमार्ग के निर्माण की रफ्तार में पहले के मुकाबले काफी तेजी आई है, हालांकि इसकी गति में उतार-चढ़ाव देखने को मिला है।

2023-24	21.5
2022-23	28.3
2021-22	28.6
2020-21	36.5
2014-15	12.1

आंकड़े किलोमीटर में, वर्ष 2023-24 के नवंबर तक के | स्रोत: MoRTH; TII

जिसने दुर्गुण का त्याग कर खुद को भगवान के सामने अर्पित कर दिया, वह स्वयं भगवान के समान पवित्र बन गया।

हृदय से प्रार्थना

अंतर्यात्रा
संकलित

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने एक दिन श्रद्धालुओं को उपदेश देते हुए कहा, साधकों को प्रत्येक प्राणी में ईश्वर के दर्शन करते रहना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपना हृदय पवित्र और स्वच्छ रखना चाहिए। एक व्यक्ति ने परमहंस जी से विनम्रता से पूछा, महाराज, प्रत्येक प्राणी में ईश्वर का निवास कैसे हो सकता है? मैं सांसारिक व्यक्ति हूं, जाने-अनजाने पाप होते रहते हैं। कोई मुझमें ईश्वर देखने लगे, तो यह कैसे उचित होगा?

स्वामी जी ने कहा, हमारे देश में ऐसे अनेक गृहस्थ हुए हैं, जिन्होंने पारिवारिक कर्तव्यों का पालन करते हुए सदाचार का जीवन बिताया है और भगवान के दर्शन किए हैं। जिसने दुर्गुण का त्याग कर खुद को भगवान के सामने अर्पित कर दिया, वह स्वयं भगवान के समान पवित्र बन गया।

स्वामी जी ने आगे कहा, अबोध शिशु जब रो-रोकर मां-मां की रट लगाता है, तो मां दौड़ी चली आती है और बालक को गोद में उठा लेती है, वह यह नहीं देखती कि बालक गंदा है। भगवान तो माताओं की भी माता हैं। यदि भक्त सच्चे हृदय से पुकारें, तो वे दौड़े चले आते हैं। शर्त यही है कि शुद्ध हृदय से प्रार्थना करनी चाहिए। प्राणी मात्र के प्रति प्रेम पनपने लगे, तो समझो कि तुम भक्ति के पथ पर बढ़ने लगे हो।

(अमर उजाला आर्काइव से)

अमर उजाला
पुराने पन्नों से — 1 मई, 1993

बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रतिमा का अनावरण

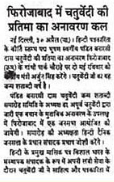
फिरोजाबाद में चतुर्वेदी की प्रतिमा का अनावरण कल

हिंदी पत्रकारिता के कीर्ति स्तंभ पद्म भूषण स्व. पंडित बनारसी दास चतुर्वेदी की प्रतिमा का अनावरण फिरोजाबाद के गांधी चौक पर दो मई को केंद्रीय मंत्री अर्जुन सिंह करेंगे। यह चतुर्वेदी जी का जन्म शताब्दी वर्ष है।

थमने के बजाय बढ़ रही जंगलों की आग

यह चिंता बढ़ गई है कि ग्रीनहाउस गैसों को अवशोषित करने वाले जंगलों में आग की घटनाएं कहीं देश के वार्षिक कार्बन पदचिह्न को बढ़ा न दें।

सीमा जावेद | **दावानल**

उत्तराखंड के अधिकांश हिस्से को कवर करने वाले देवदार जैसे शंकुधारी (कोनिफर) पेड़ों के प्रभुत्व के साथ स्प्रूस वन, पाइन, रोहडेनड्रोन के साथ यहां पाए जाने वाले पर्णपाती वनों में साल, सागौन और ओक जैसे चौड़ी पत्ती वाले पेड़ों का प्रभुत्व है। पीढ़ियों से जंगलों के ये विशाल क्षेत्र बेशकीमती रहे हैं, जो न केवल सैकड़ों प्रजातियों को घर प्रदान करते हैं (जिनमें सर्वाधिक खतरे में पड़ी कुछ प्रजातियां भी शामिल हैं), बल्कि वे ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन से ज्यादा उन्हें अवशोषित करते हैं, जो एक विशाल कार्बन सिंक के रूप में कार्य करती हैं।

विशाल हिमालय के बीच स्थित उत्तराखंड, जिसे 'देव भूमि' कहा जाता है, अपने में विविध वनस्पतियों और जीवों से भरपूर एक हरा-भरा स्वर्ग समेटे हुए है। बर्फ से ढकी चोटियां, घने जंगल और घाटियां, जिनमें उष्णकटिबंधीय वर्षा वन, शीतोष्ण वन और अल्पाइन घास के मैदान शामिल हैं, यहां की अनूठी विशेषता है। यहां ब्राह्मी, अश्वगंधा और कुथ सहित 1,748 से अधिक वनस्पति की प्रजातियां हैं। यह पक्षियों की 600 से अधिक प्रजातियों का घर है। उत्तराखंड जिम कॉर्बेट, राजाजी, नंदा देवी, फूलों की घाटी और गंगोत्री को अपने में समेटे है।

लेकिन पिछले कुछ वर्षों से बढ़ रही गर्मी में उत्तराखंड के जंगल की आग असाधारण रूप से भयावह रही है, जो हर साल बढ़ती ही जा रही है। अभी हाल में उत्तराखंड में 1,145 हेक्टेयर से अधिक जंगलों को आग अपने आगोश में ले चुकी है। चिलचिलाती गर्मी के कारण जंगलों की आग बेकाबू हो रही है। जंगलों में लगी आग के कारण घाटी में धुआं फैलने से लोग खासे परेशान हैं। हर साल फरवरी-मार्च से जंगलों में आग की खबरें आना एक सामान्य घटना है। लेकिन उत्तराखंड के जंगलों के धधकने का सिलसिला थमने के बजाय बढ़ता जा रहा है। शुष्क मौसम के चलते जंगल की आग और विकराल होती जा रही है।

टिहरी बांध प्रथम वन प्रभाग, नैनीताल वन प्रभाग, भूमि संरक्षण रानीखेत वन प्रभाग, अल्मोड़ा वन प्रभाग, सिविल सोयम अल्मोड़ा वन प्रभाग, तराई पूर्वी वन प्रभाग, रामनगर वन प्रभाग, मसूरी वन प्रभाग, लैंसडौन भूमि संरक्षण वन प्रभाग, सिविल सोयम पौड़ी वन प्रभाग, केदारनाथ वन्य जीव प्रभाग आदि में जंगल धधक रहे हैं। उत्तरकाशी जिले की बाड़ाहाट रेंज से लेकर धरासू रेंज के जंगल अधिक जल रहे हैं।

दरअसल जंगलों की आग धरती के गर्म होने की वजह से लंबे समय तक खिंचने लगी है। जंगलों में आग लगना असामान्य नहीं है, लेकिन हैरान करने वाली बात यह भी है कि अब जंगलों में आग लगने की घटनाएं तब हो रही हैं, जब पहले नहीं हुआ करती थीं। जाहिर है कि इसका सीधा नाता बदलते मौसम, यानी जलवायु परिवर्तन से है। इस साल की शुरुआत में उत्तराखंड में सर्दियों में बारिश बहुत कम हुई। हर साल की तरह 50 मिली मीटर के बजाय इस वर्ष वर्षा का स्तर 10 मिमी के आस पास ही रहा, जोकि सामान्य से बहुत ज्यादा कम है।

हिमालय में वैसे भी ग्लोबल वार्मिंग की दर सबसे ज्यादा है। मानसून की बारिश का अभाव वहां मौजूद वनस्पति को सूखा कर ज्वलनशील ईंधन में तब्दील करने के लिए पर्याप्त है। जाहिर है कि गर्मी बढ़ने से पेड़-पौधे ज्यादा सूख रहे हैं, धरती का पानी सूख रहा है, टूटे पत्ते जल्दी सूख रहे हैं और सूखे पत्ते भी आग लगने का सबब बनते हैं। तेज गर्मी के चलते पहाड़ों पर उगने वाले झाड़-झंखाड़ के सूख जाने से शुष्क ईंधन की उपलब्धता भी इन दिनों बढ़ गई है और यह आसानी से जल उठती है।

एक वैज्ञानिक अनुमान के हिसाब से, इस गर्मी में जब आग की लपटों ने दुनिया के जंगलों के सबसे बड़े हिस्सों में से एक को निगल लिया, और बदले में 2.2 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में छोड़ दिया। उत्तराखंड के जंगलों की आग कार्बन उत्सर्जन बढ़ाकर संभवतः देश के वार्षिक कार्बन पदचिह्न को बढ़ा देगी, क्योंकि जलवायु प्रणाली 'टिपिंग पॉइंट' पर पहुंच गई है। दुनिया भर में जंगलों में आग लगने की बढ़ती घटनाएं यह सवाल उठा रही हैं कि कहीं कार्बन सिंक से कार्बन उत्सर्जन के स्रोत न बन जाएं हमारे जंगल। यह मुद्दा एक वैश्विक समस्या बन चुका है। वैज्ञानिकों ने इस बात के लिए भी चेताया कि आने वाले समय में स्थितियां और भी गंभीर हो सकती हैं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 17 अंक 70

मुद्दाविहीन चुनाव

निर्वाचन आयोग द्वारा लोक सभा चुनाव की घोषणा किए तथा आदर्श आचार संहिता लागू हुए 50 दिन से अधिक हो चुके हैं। तीन चरणों का मतदान हो चुका है तथा आधे से अधिक लोक सभा क्षेत्रों में मतदाताओं ने अपने मताधिकार का इस्तेमाल कर लिया है। भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व वाले सत्ताधारी राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन तथा कांग्रेसनीत विपक्षी गठबंधन दोनों जीत के लिए लगातार प्रचार अभियान में लगे हुए हैं। इन सब बातों के बीच मतदाता अगर किसी चीज की कमी महसूस कर रहे हैं तो वह है अहम मुद्दों पर ठोस बहस। दोनों दलों ने अपने-अपने घोषणापत्र जारी किए हैं लेकिन जरूरी नहीं कि उनमें चर्चा के अहम बिंदु शामिल हों। चाहे जो भी हो, भारत में चुनाव प्रचार वैसे भी काफी हद तक घोषणापत्र से परे होता है। देश में अधिकांश बहस अप्रासंगिक और अवांछित विषयों पर केंद्रित रही है। जल्दी ही दुनिया की तीसरी बड़ी अर्थव्यवस्था बनने जा रहे देश में इससे बेहतर की उम्मीद थी। चूंकि जरूरी मुद्द नहीं उठ रहे हैं इसलिए भाषा भी प्रभावित हुई है।

यह 10 वर्ष पहले हुए लोक सभा चुनावों से एकदम विपरीत है। उस समय भाजपा ने संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन सरकार की कमजोरी का लाभ लेने के लिए 'अच्छे दिन' का वादा किया था। वह बदलाव के लिए हुआ सकारात्मक चुनाव प्रचार था और दशकों बाद एक दल को बहुमत मिला था। 2019 के आम चुनावों में राष्ट्रीय सुरक्षा का मुद्दा अहम था क्योंकि पुलवामा और बालाकोट के मामले जनता की स्मृति में एकदम ताजे थे। आज वैसा कुछ भी देखने को नहीं मिल रहा है। प्रचार अभियान इतिहास के इर्दगिर्द घूम रहा है। कई बार तो मध्यकालीन इतिहास की बातें होने लगती हैं कि किसने कब क्या खाया, आरक्षण को बरकरार रखने या बढ़ाने की बातें हो रही हैं जो अक्सर आबादी के एक हिस्से को दूसरे के खिलाफ करती हैं। अन्य बातों के अलावा संपत्ति और संसाधनों के पुनर्वितरण की बातें हो रही हैं। इनसे आर्थिक वृद्धि की गति बढ़ाने में कोई मदद नहीं मिलेगी। न ही स्कूली शिक्षा के नतीजों में कोई सुधार होने वाला है। उदाहरण के लिए विरासत कर का मुद्दा कुछ दिनों तक बिना वजह चर्चा में रहा और फिर नदारद हो गया। यह बात हम सभी जानते हैं कि भारत जैसे देश में ऐसे कर लगाना बहुत मुश्किल है।

राजनीतिक दलों द्वारा अप्रासंगिक मुद्दों पर बात करने की एक वजह चुनावों की प्रक्रिया का लंबा होना भी हो सकता है। अगर दो या तीन चरणों में चुनाव प्रक्रिया पूरी की जाती तो शायद वे अहम मुद्दों पर केंद्रित रहते। राजनीतिक बहस में सुधार की प्राथमिक जिम्मेदारी भाजपा और कांग्रेस दोनों की है। भाजपा देश को विकसित बनाना चाहती है तो उसके लिए यह अवसर था कि वह अपनी उपलब्धियां गिनाए और भविष्य के खाके पर बात करे। कांग्रेस तथा विपक्षी दलों के लिए यह मौका था कि वे उन क्षेत्रों को रेखांकित करें जिनमें सरकार अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सकी। वे मतदाताओं के समक्ष बेहतर विकल्प भी प्रस्तुत कर सकती थी। यह दुर्भाग्य की बात है कि ऐसा कुछ नहीं हो रहा है। भारतीय मतदाताओं को मोटे तौर पर व्यक्तिगत हमले सुनने को मिल रहे हैं और ऐसे मुद्दों पर बात हो रही है जो देश को आगे ले जाने वाले नहीं हैं।

भारत को तेज आर्थिक विकास की आवश्यकता है। इसके लिए राजनीतिक पूंजी और ऊर्जा को टिकाऊ वृद्धि सुनिश्चित करने पर केंद्रित रहना चाहिए। इससे जुड़ा एक मसला रोजगार तैयार करने का है। देश की बढ़ती श्रम शक्ति के लिए तथा कृषि में लगी देश की आधी आबादी को उससे बाहर निकालने के लिए उत्पादक रोजगार की आवश्यकता है। तभी उत्पादकता और वृद्धि हासिल किए जा सकेंगे। भारत ये लक्ष्य कैसे हासिल करेगा, यह बात किसी भी राजनीतिक बहस के केंद्र में होनी चाहिए। सेंटर फॉर द स्टडी ऑफ डेवलपिंग सोसाइटीज ने चुनाव के पहले एक सर्वेक्षण कराया था जिसमें पाया गया था कि मुद्रास्फीति और रोजगार अधिकांश भारतीयों के लिए प्रमुख मुद्दा हैं। अब वक्त आ गया है कि राजनीतिक बहस उन मुद्दों पर हो जो जनता के जीवन को सीधे प्रभावित करते हैं।

बिनय सिन्हा

आर्टिफिशल इंटेलिजेंस सामाजिक दृष्टि से सही

एआई की क्षमताओं और रोजगार पर उसके असर के बारे में हो हल्ले के बीच इसे इस प्रकार विकसित करने की जरूरत है कि यह सामाजिक दृष्टि से कारगर साबित हो। बता रहे हैं अजित बालकृष्णन

आर्टिफिशल इंटेलिजेंस (एआई) के कारण रोजगार बाजार में निराशा या उछाल की खबरें हाल के दिनों में काफी सुर्खियों में रही हैं। ऐसी ही एक खबर में देश की एक सबसे बड़ी सॉफ्टवेयर सेवा कंपनी के प्रमुख के हवाले से कहा गया है, 'एक वर्ष के भीतर देश के कॉल सेंटरों में अधिकांश काम एआई के हवाले होगा।' कॉल सेंटर उद्योग में करीब तीन लाख से अधिक भारतीय काम करते हैं जिनमें से अधिकांश की उम्र 30 से कम है। इनमें से अधिकांश अविवाहित और कॉलेज जाने वाले युवक-युवतियां शामिल हैं। अगर उनके रोजगार चले जाते हैं तो यह बहुत बड़ी आपदा होगी। इसके बाद गोल्डमैन सैक्स ने एक वक्तव्य जारी करके कहा कि एआई के कारण जल्दी ही 30 करोड़ से अधिक ऐसे रोजगार खत्म हो सकते हैं जो कार्यालयीन प्रकृति के हैं। उसके पश्चात अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के एक ब्लॉग में आधिकारिक तौर पर कहा गया कि जल्दी ही दुनिया भर में 40 फीसदी रोजगार एआई के पास चले जाएंगे।

ऐसी निराशाजनक सुर्खियां देखकर आश्चर्य होता है कि क्या नियोक्ता केवल इसलिए एआई को अपना रहे हैं ताकि वे कर्मचारियों की संख्या कम करके अपना मुनाफा बढ़ा सकें। इस समय एआई को जिस दिशा में विकास के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है, यानी कर्मचारियों की संख्या कम करने के लिए, उस पर मैं सवाल उठा रहा हूं। ऐसा इसलिए कि सोशल कंस्ट्रक्शन ऑफ टेक्नॉलजी (एससीओटी) के रूप में एक नया विचार सामने आ रहा है जो कह रहा है कि तकनीकी नवाचार अपने बल पर संचालित नहीं है बल्कि वह सामाजिक शक्तियों से संचालित है।

आइए इस बात का एक उदाहरण देखते हैं कि कैसे सामाजिक शक्तियों ने साइकल के विकास को आकार दिया। साइकल का आरंभिक संस्करण 1800 के दौर में यूरोप में सामने आया जिसमें पैडल नहीं होते थे। उपयोगकर्ताओं को अपने पैरों को जमीन का सहारा देना पड़ता था जिससे पहिया चलता था। सन 1860 के आसपास साइकिलों के अगले पहिये में पैडल और क्रैंक लगाए गए। इस डिजाइन की वजह से साइकल बहुत उपयोगी बन गई। उसकी गति में भी सुधार हुआ। यह घुड़सवारी का विकल्प बनकर सामने आई। 19वीं सदी के अंत तक पहिए बराबर आकार के कर दिए गए और पैडल को पिछले पहिये से जोड़ने वाली चैन इस्तेमाल की गई जिससे साइकल की स्थिरता बढ़ी और वह आरामदायक हुई। इसे 'सेफ्टी बाइसिकल' का नाम दिया गया और यह खूब चर्चित हुई। खासतौर पर महिलाओं के लिए साइकल चलाना आधुनिकता का प्रतीक बन गया। इसके जरिये वे काम पर जा सकती थीं। इसके बाद अमेरिकी सेना ने अपनी घुड़सवार रेजिमेंट की जगह साइकल वाली रेजिमेंट तैनात कर दी। उसके बाद 20वीं सदी में न्यूमैटिक टायर, एल्युमीनियम और बेहतर ब्रेक आदि ने वह साइकल बनाई जिस पर हम आज चलते हैं। स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता ने साइकल के इस्तेमाल को और व्यापक बनाया। आज साइकल को एक स्वच्छ और पर्यावरण के अनुकूल साधन माना जाता है। साइकल के विकास के इस अध्ययन को देखते हुए ही कई विद्वान एससीओटी आंदोलन के अंतर्गत साथ आए और यह देखना शुरू किया कि विभिन्न तकनीकें सामाजिक शक्तियों को किस प्रकार प्रभावित करती हैं। इन प्रयासों को लेकर 'द सोशल कंस्ट्रक्शन ऑफ टेक्नॉलाजिकल सिस्टम्स' नामक एक पुस्तक भी लिखी गई है।

हाल के दिनों में चैटजीपीटी और उसके जैसी अन्य एआई तकनीक को लेकर काफी उत्साह है कि उनमें जादुई गुणधर्म हैं। हालांकि चैटजीपीटी के जवाब बेहतर विनम्रता से भरे हुए हैं। उदाहरण के लिए मैंने गत सप्ताह उससे प्रश्न किया, 'पाइथन का नवीनतम संस्करण कौन सा है?' इसके जवाब में चैटजीपीटी ने कहा, 'जनवरी 2022 के मेरे ताजा अपडेट के मुताबिक पाइथन का नवीनतम स्थिर संस्करण था 3.10। बहरहाल तब से शायद नए संस्करण भी जारी किए गए हों। आप पाइथन की आधिकारिक वेबसाइट पर या पाइथन पैकेज इंडेक्स पर ताजा संस्करण की जानकारी पा सकते हैं।' हम जानते हैं कि चैटजीपीटी की जानकारियां उसके नवीनतम अपडेट पर निर्भर करती है और यह भी यह एक खोज इंजन है। चैट जीपीटी और उसके जैसे अन्य उपायों मसलन गूगल के जेमिनी आदि को तैयार करने वालों ने इंसानी बातचीत से इनपुट लेकर बहुत महत्त्वपूर्ण काम किया है। वे मित्रतापूर्ण बातचीत के लहजे में ही जवाब भी देते हैं। जाहिर सी बात है कि बातचीत का यही दोस्ताना तरीका इनके जवाबों को 'आर्टिफिशल इंटेलिजेंस' के रूप में स्वीकार करने देता है। दूसरे शब्दों में कहें तो इन्हें तैयार करने वाले प्रोग्रामर जानबूझकर अपनी सॉफ्टवेयर सेवा को 'सामाजिक रूप से तैयार' करते हैं ताकि बातचीत की शैली उन्हें मानवीय स्वरूप प्रदान करे। यह 1970 के दशक के 'पंच्ड कार्ड' और फिर भारी-भरकम 'की बोर्ड' और माउस से होता हुआ टच स्क्रीन तक का सफर है। इसके बाद कीबोर्ड और माउस की जगह वॉइस इनपुट और वाइस आउटपुट लेने लगे। अब हमारे सामने यह विषय आता है कि हमें एआई को किस दिशा में विकसित करना चाहिए: लिपिकीय या अफसरशाही श्रम को प्रतिस्थापित करने के लिए जैसा कि पिछले दशकों में कंप्यूटर ने किया था या फिर कारोबार के लिए वास्तविक मूल्यवर्द्धन किया जाना चाहिए? जब एमेजॉन के संस्थापक और प्रमुख जेफ बेजोस से हाल ही में यह सवाल पूछा गया (वह एआई के लिए मशीन लर्निंग शब्द इस्तेमाल करते हैं) तो उनका जवाब था, 'मैं कहूंगा कि हम मशीन लर्निंग से जो कुछ हासिल कर रहे हैं उसका बड़ा हिस्सा सतह के नीचे है। इसमें खोज परिणामों में सुधार, उपभोक्ताओं को उत्पादों की बेहतर अनुशंसा, इन्वेंटरी प्रबंधन के लिए बेहतर पूर्वानुमान आदि शामिल हैं।' इसके कारण ही एमेजॉन लगातार तरक्की कर रहा है और उसके कर्मचारियों की संख्या भी घटी नहीं बल्कि बढ़ी है।

शायद हमारे सरकारी अधिकारियों को सामाजिक दृष्टि से सही एआई या मशीन लर्निंग उपकरण तैयार करने के लिए कारोबारों को उसी तरह की चेतावनी जारी करनी चाहिए जैसी अमेरिका के फेडरल ट्रेड कमीशन ने हाल ही में किया। उसने पूछा, 'क्या आप अपने एआई उत्पादों की क्षमता को बढ़ाचढ़ाकर पेश कर रहे हैं?' आयोग ने कारोबारों को चेतावनी देते हुए कहा कि ऐसे दावे भ्रामक साबित होंगे अगर उनके साथ वैज्ञानिक प्रमाण न हों। कंपनियों को भी इस बात के लिए प्रोत्साहित किया जा रहा है कि वे एआई को उच्च उत्पाद लागत या श्रम संबंधी निर्णयों के लिए उचित ठहराया जाए। यह भी कहा जा रहा है कि उत्पादों को जनता के लिए पेश करने के पहले समुचित जोखिम आकलन की सावधानी बरती जाए।

(लेखक इंटरनेट उद्यमी हैं)

'नेटवर्क स्टेट' समुदाय की परिकल्पना

तकनीकी तंत्र

देवांशु दत्ता

नागरिक समाज के कार्यकर्ता अक्सर गेटेड कम्युनिटी (चहारदीवारी वाली रिहायशी कॉलोनी) को लेकर शिकायत करते हैं। इन कम्युनिटी के रहवासी आसपास के अन्य बाशिंदों से अलग रहते हैं और अपने लिए ऐसा बुनियादी ढांचा और सुविधाएं जुटाते हैं जो आसपास के लोगों को उपलब्ध नहीं होतीं। इनमें जिम, स्विमिंग पूल, टेनिस कोर्ट, स्क्वैश कोर्ट आदि हो सकते हैं। इसके अलावा उन्हें 24 घंटे सुरक्षा, पानी, बिजली और इंटरनेट की सुविधा भी मिलती है। गुरुग्राम जैसे इलाकों में बहुत विडंबनापूर्ण स्थिति बन चुकी है जहां अमेरिकी शैली वाली रिहायशी कॉलोनियों के बाहर सड़क पर भैंस का दूध निकाल कर बेचते देखा जा सकता है। इन कॉलोनियों का मतदान का प्रतिशत भी कम होता है। एक बार जब आप अपनी बिजली, पानी और सुरक्षा की व्यवस्था कर लेते हैं तो आपको स्थानीय प्रशासन से ज्यादा लेनादेना नहीं होता। अगर आप बहुराष्ट्रीय कंपनियों में काम करते हैं तो आप राष्ट्रीय राजनीति से भी दूरी बरत सकते हैं। एक तार्किक कदम बढ़ाएं तो अलग होकर विकेंद्रीकृत राज्य के नागरिक क्यों नहीं बन जाते? टेक उद्योगपति बालाजी श्रीनिवासन ने अपनी पुस्तक 'द नेटवर्क स्टेट' में इसी बात की पड़ताल की है। यह एक दिलचस्प वैचारिक प्रयोग है।

उनके शब्दों में 'एक नेटवर्क स्टेट वास्तव में एक ऐसा समुदाय है जिसमें उच्च सामूहिक कदम उठाने की क्षमता होती है, जो दुनिया भर में क्राउड फंडिंग करता है और पहले से मौजूद राज्यों से कूटनीतिक मान्यता प्राप्त कर लेता है।' यह 'ऐसे लोगों का समुदाय होता है जो गणित, क्रिप्टोकरेंसी, स्थायी रूप से समुद्र में रहने वाले, अंतरिक्ष यात्रा करने वाले, तकनीक की मदद से मानवीय क्षमता बढ़ाने वाले, जीवनावधि बढ़ाने वाले और ऐसे विचारों पर काम करने वाले होते हैं जो शुरू में पागलपन लग सकते हैं लेकिन जिन्हें तकनीक की मदद से हासिल किया जा सकता है।'

बालाजी की उम्र 40-50 के बीच में है और वह प्रवासियों की दूसरी पीढ़ी से आते हैं। उन्होंने स्टैनफर्ड विश्वविद्यालय से पीएचडी की है और वह टेक उद्योग में निवेश करते हैं। वह क्रिप्टोकरेंसी प्लेटफॉर्म कॉइनबेस के मुख्य प्रौद्योगिकी अधिकारी रह चुके हैं तथा वेंचर कैपिटल फर्म आंद्रेस्सेन होरोवित्ज में साझेदार रहे हैं। वह कई जानीमानी टेक कंपनियों के साथ उनके शुरुआती दौर में जुड़े रहे हैं और उनका ध्यान स्वास्थ्य से जुड़ी तकनीक एवं क्रिप्टोकरेंसी पर रहा है। वह एक ऐंजल निवेशक भी हैं और इस उद्योग के कई अन्य लोगों की तरह वह भी उदारवादियों के साथ सहानुभूति रखते हैं।

ऐसे कई सामुदायिक रिहाइश वाले इलाके हैं जहां साझा हितों वाले लोग एक साथ रहते हैं। वे बेंगलूरु, गुरुग्राम, वाशी, सिलिकन वैली, डबलिन, ह्यूस्टन आदि टेक केंद्रों के आसपास रहते हैं। वे चाहे जहां भी हों वास्तव में वे 'नेटवर्क स्टेट के नागरिक' होते हैं जिनकी आय बहुत अधिक होती है और वे स्थानीय तथा गैर टेक क्षेत्र के लोगों से काफी अलग होते हैं।

बालाजी ने अपनी पुस्तक में 'गेट के दायरे में रहने वाले समुदाय' नहीं लिखा है। मैंने उसका इस्तेमाल किया है क्योंकि अक्सर ऐसे लोग इसी तरह की आवासीय व्यवस्था में रहते हैं। वे अक्सर बेहतर बुनियादी ढांचा तैयार करने के लिए अपने ही संसाधन और ज्ञान का इस्तेमाल करते हैं तथा उनके जीवन की गुणवत्ता भी दूसरों से बेहतर होती है। वे एक साथ रहना पसंद करते हैं और वे तकनीक निर्माता तथा उसे जल्दी अपनाने वालों में शामिल होते हैं।

ये समुदाय पूरी तरह नेटवर्क वाले होते हैं और कई एक दूसरे को केवल इसलिए जानते हैं क्योंकि वे एक ही पेशे और सामाजिक दायरे के रहने वाले होते हैं। लिंक्डइन और फेसबुक पर आपको बहुत आसानी से ऐसे कई लाख लोग मिल जाएंगे जो समान विचार रखते हैं। हां यह सही है कि व्यापक सोशल नेटवर्किंग प्लेटफॉर्म के मानकों पर ये लोग खास बड़े समुदाय का हिस्सा नहीं हैं।

इन सभी बंटे हुए लोगों को एक साथ रखने पर आपको एक विकेंद्रीकृत नेटवर्क स्टेट मिल जाएगा। यह नेटवर्क स्टेट आसानी से दस लाख से बहुत अधिक संख्या वाले लोगों का हो सकता है क्योंकि माना जा सकता है कि उच्च तकनीक क्षेत्र में काम करने वाले कई लोग इसके नागरिक बनने में रुचि रख सकते हैं। राष्ट्र राज्य के मानक के आधार पर देखें तो यह अच्छी खासी तादाद है। संयुक्त राष्ट्र के सदस्य देशों में करीब 20 फीसदी ऐसे हैं जिनकी आबादी 10 लाख से कम है। दुनिया के आधे से अधिक देशों की आबादी एक करोड़ से कम है।

बालाजी संकेत करते हैं कि इंटरनेट हमें दुनिया भर में अबाध ढंग से नेटवर्क बनाने की इजाजत देता है और इसकी मदद से दिल्ली के हजारों अपार्टमेंट्स को कैलिफोर्निया के किसी इलाके के सैकड़ों घरों से जोड़ा जा सकता है। क्लाउड की मदद से हर जरूरी चीज के लिए तालमेल भी बनाया जा सकता है।

चूंकि सभी नागरिक उच्च आय वाले, समझदार लोग होते हैं इसलिए वे साझा संसाधनों के लिए क्राउडफंडिंग कर सकते हैं। बालाजी सुझाते हैं कि नेटवर्क राज्य को एक स्टार्ट अप के रूप में पेश किया जा सकता है। वह लाइव ऐक्शन रियल प्लेयर गेम (एलएआरपी) का उदाहरण देते हैं। जैसे-जैसे इसका आकार बढ़ता है यह मौजूदा राज्यों से कूटनीतिक मान्यता भी प्राप्त कर सकता है। इसके लिए दोहरी नागरिकता जैसी व्यवस्था अपनाई जा सकती है।

क्या यह ऐसा रास्ता हो सकता है जिसके जरिये 21वीं सदी के राष्ट्र राज्य विकसित हों, जो अपने वर्तमान अधिनायकवादी और धार्मिक तथा विविध प्रकार के लोकतंत्रों के मिश्रण से आगे बढ़कर एक विकेंद्रीकृत जगह बन सकें जो साझा हितों से आबद्ध हों? सरसरी तौर पर आसान नजर आने वाली इस व्यवस्था के गहराई में जाने पर कई जटिलताएं सामने आ सकती हैं।

आपका पक्ष

जंगल की आग में दहकता पर्यावरण

पिछले एक दशक से दुनिया भर के जंगलों में लगने वाली आग की घटनाओं में वृद्धि गंभीर चिंता का विषय है। देश में सर्वाधिक वन क्षेत्र वाले मध्य प्रदेश के जंगलों में पिछले डेढ़ माह में आग लगने की 550 घटनाएं हुईं। धरती के लिए 20 प्रतिशत ऑक्सीजन की आपूर्ति करने वाले अमेजन के जंगल भी आग से अछूते नहीं रहे। आग की इन घटनाओ से भारी-भरकम आर्थिक नुकसान तो होता ही है, वनों का क्षेत्रफल भी लगातार सिकुड़ता जा रहा है। वनोपज में कमी आ रही है। बहुमूल्य वन संपदा और दुर्लभ वन्यजीवों का नाश हो रहा है। सबसे कीमती हमारा पर्यावरण भी प्रभावित हो रहा है। जंगल वैश्विक धरोहर है जिस पर संपूर्ण धरती का अस्तित्व टिका हुआ है। इसलिए इनके संरक्षण के लिए विश्व के सभी देशों को संयुक्त पहल करनी होगी। ऐसे उपाय किए जाने चाहिए जिनसे आग लगने की घटना पर नियंत्रण हो। सूखे पत्ते, टहनियां और सूखी घास आग फैलने के महत्त्वपूर्ण कारण होते हैं जिसका समय-समय पर निस्तारण किया जाना चाहिए। जंगलों में अग्निरोधी साधनों की पर्याप्त व्यवस्था की जानी चाहिए। वन विभाग के कर्मियों में वृद्धि कर जंगल में नियमित निगरानी की व्यवस्था होनी चाहिए। जंगल में पर्यटकों से धूम्रपान निषेध के नियमों का कड़ाई से पालन करवाना चाहिए। मार्च से मई तक के ग्रीष्मकालीन समय में आग की घटनाएं बढ़ती हैं। अतः इन दिनों विशेष सतर्कता की जरूरत है। ऐसी स्वचलित तकनीक विकसित करनी चाहिए जो आग लगने की न सिर्फ सूचना दे बल्कि उसके शमन के भी उपाय शुरू कर दे। उन्नत तकनीक के इस युग में कुछ भी असंभव नहीं है। वन संरक्षण के लिए विशेष कोष बनाने चाहिए जिसमें सभी देशों का अंशदान हो।

विमलेश पगारिया, धार

उत्तराखंड के जंगलों में लगी आग बुझाने के लिए मंगलवार को भारतीय वायु सेना के हेलीकॉप्टर से पानी का छिड़काव किया गया

बिजली कटने की समस्या से राहत कब

गर्मी बढ़ने के साथ ही बिजली की मांग भी बढ़ेगी। जिस राज्य में कोयला आधारित बिजली निर्माण होता है, वहां कोयले पर निर्भरता कम करनी ही होगी। पहाड़ी राज्य हिमाचल प्रदेश में भी अब एसी और कूलर की जरूरत दिखने लगी है। ठंडे शहर शिमला में गर्मी बढ़ रही है और घरों में एसी चलने लगे हैं जिससे बिजली की खपत बढ़ी है। देश में पनबिजली परियोजनाएं तो कई हैं लेकिन गर्मी में नदियों का जलस्तर कम हो जाने से उत्पादन क्षमता भी कम हो जाती है। देश में बिजली समस्या हल करने के लिए जर्मनी से सबक लेते हुए सोलर पैनलों के जरिये बिजली जुटाने पर गंभीरता से विचार करना चाहिए। जर्मनी के लोग बिजली के क्षेत्र में आत्मनिर्भर होने की कोशिश कर रहे हैं। वहां के बहुत से होटल, विद्यालय, अस्पताल सोलर पैनलों के जरिये बिजली पैदा कर सराहनीय काम कर रहे है। सोलर पैनल से बिजली मिलने से एक तो बिजली बिल मे कटौती होती है दूसरा पर्यावरण पर भी इसका विपरीत प्रभाव नही पड़ता। भारत सरकार को चाहिए कि आम लोगों को सोलर पैनल के लिए जागरूक करे और वित्तीय सहायता प्रदान करे।

राजेश कुमार चौहान, जालंधर

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिज़नेस स्टैंडर्ड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in
पत्र/ईमेल में अपना डाक पता और टेलीफोन नंबर अवश्य लिखें।

देश-दुनिया

फोटो – पीटीआई

दक्षिण चीन सागर में भारतीय नौसेना के पूर्वी बेड़े की परिचालन संबंधी तैनाती के तौर पर तीन भारतीय पोत आईएनएस दिल्ली, आईएनएस शक्ति और आईएनएस किल्टन सोमवार को (स्थानीय समयानुसार) सिंगापुर पहुंचे। उधर दक्षिण चीन सागर में चीन अपनी सैन्य आक्रामकता दिखा रहा है और इधर भारतीय नौसेना ने कहा कि इन तीनों पोतों का सिंगापुर पहुंचना दक्षिण चीन सागर में भारतीय नौसेना के पूर्वी बेड़े की परिचालन संबंधी तैनाती का हिस्सा है।